अध्यात्मज्ञान प्रवेशिका



सिद्धान्त रत्नाकर, शान्तिसधाकर
श्री १०५ पू० क्षु० सूरिसिंह जी

श्री जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला का द्वितीय पुष्प

अध्यात्म-ज्ञान-प्रदीपिका

लेखक—

शान्तिसुधाकर, सिद्धान्तरत्नाकर

श्री १०५ क्षुल्लक सूरिसिंह जी

प्रकाशक—

मंत्री—जैनसिद्धान्त ग्रन्थमाला,

पहाड़ीधीरज, देहली।

प्रथम बार १०००	चैत्र सुदी २ वीर सं० २४७६	मूल्य ।।।) सजिल्द १)

मुद्रक—
अजितकुमार जैन शास्त्री
अकलंक प्रेस,
१०५२, गली पान मण्डी, सदर बाजार, देहली

आद्य वक्तव्य

यह भौतिक युग है। भौतिकवादी संसार अणु बम और उद्‌जन बमकी उन्नति की स्पर्धामें सतत संलग्न है। पर असीम चिन्ता, व्याकुलता और कठिनाइयाँ उसे घेरे हुये हैं। गत दो महायुद्ध संसार में शान्ति स्थापित करनेमें समर्थ न हो सके। आशा थी कि युद्धके पश्चात् शान्तिके दर्शन होंगे पर उसके पश्चात् तो इतनी समस्यायें और मनोमालिन्य बढ़ गये कि शान्ति का नाम ही स्वप्न होगया।

समस्त संसार आज विश्व-शान्तिकी आवश्यकता का अनुभव कर रहा है। अनेक देशोंमें कान्फ्रेंसें हो रही हैं पर अपनी २ वाचालतासे असत्यको चतुराई (Tact) का रूप देकर विश्वशान्तिका राग आलापने मात्रसे शान्ति कैसे हो सकती है। यह तभी सम्भव है जब सबके हृदय स्वच्छ हों तथा बुद्धि-हृदय, भोग-त्याग, काम-संयम, स्वार्थ-परमार्थ,

व्यक्ति-समष्टि तथा देशप्रेम और विश्वबन्धुत्व का सुन्दरतम समन्वय और सम्मिश्रण हो। जहां भोलापन हो अज्ञानता न हो, स्फूर्ति हो उच्छृङ्खलता न हो, प्रेम हो मोह न हो, उत्साह हो ईर्ष्या न हो, दम हो दमन न हो तथा आत्म-गौरव हो पर अभिमान न हो। जहां अंग २ में शक्ति हो, मनुष्यों के हृदयमें शैशवका भोलापन हो, मस्तिष्कमें वृद्धावस्थाका परिपाक हो। जहां आत्मामें शान्ति हो तथा मानवता और प्रकृति अपनी वास्तविक और मनोहारिणी छविमें साथ २ विहार करती हो। पर यह सब निरे भौतिकवादके बल पर होना नितान्त असम्भव है।

आज मानव-मस्तिष्क का उपयोग घातकतम अस्त्र-शस्त्रोंके आविष्कार, शरीरका उपयोग उनके निर्माण तथा धनका उपयोग शस्त्रोत्पादनकी वृद्धि में किया जा रहा है। अब मानव जीवनका ध्येय बदला हुआ है और संसारकी दृष्टि मात्र भौतिक पदार्थों तक ही सीमित है।

वर्तमानमें उन्नति-शिखर पर पहुँचे हुये देशोंने विविध वादोंको जन्म दिया और बड़ी तत्परतासे उनको कार्यरूपमें परिणत किया पर उनके ऐसे कटुक फल अनुभवमें आये जिनसे संसारकी रही सही शान्ति भी विलीन हो गई। अतः संसारके उच्चतम मस्तिष्क बड़े चक्करमें हैं और वे इससे निकलने का मार्ग ढूंढ़ निकालना चाहते हैं। भौतिकवादकी अन्धेरी और गहन निशामें सुख शान्तिरूपी सूर्यका प्रकाश असम्भव समझकर अब उनकी दृष्टि आध्यात्मिकवाद की ओर जाने लगी है। वे भारतसे इस विषयमें नेतृत्वकी आशा करते हैं।

भारतीय धर्मोंने मानव जीवनका जो ध्येय प्रतिपादन किया है, शांति स्थापनके लिये अन्तमें संसार को उसे अपनाना ही पड़ेगा। इन धर्मोंमें जैन-धर्म का स्थान बहुत ऊँचा है और संसारमें शान्ति-स्थापन का अनुपम मार्ग भी उसका अपना और निराला है। उस के अहिंसा और अपरिग्रह जैसे महान सिद्धांत न सिर्फ संसारमें शांति स्थापनके लिये

अमोघ अस्त्र हैं अपितु आत्मा की परमोन्नति अर्थात् उसे परमात्मा बना देनेमें भी समर्थ हैं।

वास्तवमें जो कार्य, मात्र कानून बनाने या कहने से नहीं हो सकते वे हृदयमें उस कार्यकी हेयोपादेयता का ज्ञान हो जानेपर सरलतासे हो सकते हैं और यह धार्मिक तथा आध्यात्मिक ज्ञानसे ही संभव है। अत: हम यदि संसारमें सच्ची और वास्तविक शान्ति चाहते हैं तो संसारके प्रत्येक व्यक्तिको ऊंचा उठानेका यत्न करें तथा आत्मा, संसार और शांति व उसके साधनोंका वास्तविक स्वरूप संसारके सामने रखें।

अध्यात्म एक गहन विषय है और उसका उपदेश सरल नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति इस विषयमें मार्ग–दर्शक नहीं बन सकता। पर आज भी ऐसे विद्वानोंका सर्वथा अभाव नहीं है। श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक सूरि सिंह जी महाराज धर्म शास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् अनुभवी तथा संयमी व्यक्ति हैं। संस्कृत, मराठी, कनड़ी और हिन्दी आदि भाषाओंपर आपका अधिकार है तथा भिन्न २ भाषाओंमें आपके कई

उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत 'अध्यात्म प्रवेशिका' में आपने गहन विषयोंपर अत्यन्त सुबोध और सरल भाषामें प्रश्नोत्तर रूपमें अच्छा प्रकाश डाला है। इस में अतीव उपयोगी सामग्री विद्यमान है तथा पाठकोंको इससे अत्यन्त लाभ पहुँचेगा।

आध्यात्मिक विषय गूढ़ होनेके कारण कुछ प्रश्नोत्तर सर्वसाधारणके लिये संभवतः कठिन प्रतीत हों पर धीरे २ वे उनका मर्म समझनेमें समर्थ होंगे। कुछ प्रश्नोत्तर दूसरी बार भी दिये गये हैं पर विषय को स्पष्ट करनेके लिये प्रसंगानुसार उनका पुनः देना आवश्यक समझा गया है।

श्री पूज्य क्षुल्लक जी ने यह ग्रन्थ लिखकर समाज का बड़ा उपकार किया है। इसके लिये उनको जितना धन्यवाद दिया जाय कम है। अकलङ्क प्रेसके मालिक श्री पं० अजित कुमार जी शास्त्री ने इस ग्रन्थके प्रूफ संशोधन तथा प्रकाशन आदि में जो महती सहायता दी है उसके लिये मैं उनका भी आभारी हूँ।

सदरबाजार, देहली
ता० १५-३-५०

विनीत—
हीरालाल जैन 'कौशल'
(साहित्यरत्न, शास्त्री, न्यायतीर्थ)
प्रकाशनमन्त्री।

भूमिका

अनादि काल से संसारी आत्मा कर्म के विकार से इस महा दुःखस्वरूप संसार--परिवर्तन में दुःख भोग रहा है। इस दुःख से दूर होने के लिये निर्विकार शुद्ध बुद्ध आत्मा का ध्यान करना परम जरूरी है। उस परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान के विना ध्यान भी नहीं कर सकते इसलिये परमात्मा के स्वरूप के ध्यान के लिये आत्म-तत्व का चिन्तवन करना चाहिये उस चितवन के लिये आत्मा के गुण और पर्यायों का स्मरण करने के लिये मै कुछ लिखने की भावना से बैठा था। उस समय मन में आया कि, बहुत से लोग आत्मबोध को चाहते हैं उनको अध्यात्मस्वरूप ज्ञान के लिये कुछ न कुछ लिखने से पहिले 'अध्यात्म प्रवेशिका' लिखने का भाव मन में आया कि तदनुसार अल्पज्ञों को अध्यात्म विषय में प्रवेश होने के लिये प्रश्नोत्तर रूप से लिखने का प्रयास किया है।

अनादि संसारमें अनंत जीवोंको अपनी आजीविका के विषय में जो कुछ ज्ञान चाहिये वह उस ज्ञानके प्राप्त करनेमें अनेक कष्ट सहन करते हैं तथा धनका भी व्यय करके उस लौकिक व्यवहार के विषय को पाते समय अनेक कष्ट सहन करते हैं और उस विद्या को साधते हैं। लेकिन वे लोग इस विषय को भूल गये हैं कि, जो विद्या अनन्त कालतक सुख देने को समर्थ है वह आध्यात्मिक ज्ञान रूप विद्या कितनी आवश्यक है। और इस विषय को समझते नही तथा आचरण भी नहीं करते यह बड़ा आश्चर्य है।

आध्यात्मिके ज्ञान के लिये मेरे पास कई आदमियों ने कुछ प्रश्न पूछे थे लेकिन मैं ने कुछ विषयों को गुप्त रखने के हेतु से उनको नहीं पढ़ाया असली अध्यात्म-विद्या हर एक को देना ठीक भी नहीं यह समझ कर उनको देना मंजूर नहीं किया। और विषयों को तो समझाता हूँ, उपदेश भी देता हूं तोभी आत्मा का और कर्म का अनादि संबंध तथा सप्त त-

त्वों को सिद्धों में भी घटित करने का विषय समझाता नहीं मैंने अपनी जिंदगी में सिर्फ २-३ व्यक्तियों को समझाया है। भेद विज्ञान किसको कहते हैं। 'आत्मा और कर्म का संबंध जानना भेद विज्ञान है, या आत्मा और पुद्गल के भेद को जानना भेद विज्ञान होता है' ऐसा बहुतसे भाई कहते हैं ऐसे तो उपरोक्त विषयों का भेद सबही जानते हैं लेकिन उसको ही भेद-विज्ञान समझना भूल है। आत्मा और पौद्गलिक शरीर में भेद मानने को भी कोई २ भेद-विज्ञान कहते हैं किन्तु वह भेद विज्ञान नहीं है। कर्म-मल को और आत्मा को भिन्न मानना भी भेद विज्ञान नहीं है। भेद-विज्ञान उपरोक्त बातों से होता है ऐसा मानने पर अन्यमतावलंबी लोग भी उपरोक्त प्रकार से ही भेद विज्ञान मानते है। तो उनको भी क्या भेदविज्ञान-सम्यक्त्व हो गया ? ऐसा माननेमें क्या हानि है ? यदि हानि नहीं मानोगे तो उनमें और जैनियोंमें अंतर ही क्या है ? जिससे सम्यक्त्वी का और मिथ्यात्वी का व्यवहार भी ऐसे ही होगा।

इसलिये इतने मात्र सेही भेद--विज्ञान न होकर भेद-विज्ञान कुछ और ही निराला विषय है - ऐसा साफ तौरसे दिखाना है। वह भेद-विज्ञान पुस्तककी विद्या से नहीं मिलेगा। उस यथार्थ भेद विज्ञान के लिये सद्गुरुओं के पास जाकर उनकी सेवा भक्ति आदि करके ही उसका विषय समझना आवश्यक है। इस विषय को पूर्व ग्रन्थकार बहुत लिख चुके हैं। आध्यात्मिक ज्ञान रहस्यमय गूढ है वह चाहे जैसे व्यक्ति को यों नहीं दिया जाता। पात्रता देखकर योग्य व्यक्ति को ही विषय बतलाया जाता है। मंत्र, अध्यात्मःविद्या, सिद्धान्त-रहस्यादि हर एक को देने की हमारे प्राचीनाचार्यों ने मना की है। मिथ्यादृष्टियों के साथ अध्यात्म चर्चा करने को भी मना की है। इसलिये यह अध्यात्म-विद्या हर एक आदमी को बताना ठीक नहीं। यदि मोह वश अयोग्य शिष्यों को अध्यात्म विद्या दी जाय तो वह शिष्य अपने सदाचारको छोड़ कर दुराचारी बन सकता है। क्योंकि उसको पाप

और पुण्य का भय नहीं रहता और प्रमादी बनकर अपना विचार बना लेता है कि "पुद्गल के साथ पुद्गल का मिलान होने से कोई हानि नहीं हो सकती अध्यात्म-विद्या वाला कर्मों से लिप्त नहीं होता है क्योंकि, कर्म रूपी हैं, आत्मा अमूर्त है कभी भी दोनों का बंध होता नही कभी आकाश को कोई लेप कर सकता है ? नहीं' इस प्रकार भाव हो कर कर्मबंध को कोई चीज नहीं मानता हुआ निःशंक पाप प्रवृत्ति में तन्मय होजाता है। इसलिये अयोग्य शिष्यों को अध्यात्म विद्या घातक ही है योग्यायोग्य विचार प्रवृत्ति वाले को ही अध्यात्म विद्या देते हैं। अध्यात्म विद्या तो भाग्यवानों को ही मिलती है।

अन्यथा वेदपांडित्यं शास्त्रपांडित्यमन्यथा।
अन्यथा तत्वपांडित्यं जीवा क्लिश्यंति चान्यथा॥

यथार्थ निश्चयनय से तत्व ज्ञान प्राप्त होने से ही अध्यात्म विद्या मिल सकती है। आत्मज्ञ ही असली आत्मा के तत्व को जानता है। जो तत्व को जानता है वही आत्मज्ञ होकर बन्धन रूप अष्ट कर्मों

का नाश करता है और निर्विकार मुक्ति-स्वरूप को पा लेता है।

यह अध्यात्म-प्रवेशिका पुस्तक मैंने गतवर्ष नांदणी में—अठांईमें आठ उपवास किये थे उस समय मैं जंगल की गुफा में था उन आठ दिनोंमें—लिख डाला था कुछ बाकी रही थी वह पीछे लिखी यह पुस्तक रोहतकनिवासी धर्मव्रती श्रीजिनमती, धर्मपत्नी ला० बिच्छालाल जैन रईसके निमित्त से ही लिखी गयी है मैं जिनमती को बारबार आध्यात्मिक विषय समझाने के हेतु से पत्र लिखा करता था उस समय मन में आया कि प्रश्नोत्तर रूप से रखकर उसको समझाने के हेतु लिख डालूं ऐसा करके वही पुस्तक सब किसीके उपयोगके लिये छपवा दी है इस पुस्तकमें किसी गुप्त विषयका स्फो-नहीं किया है मैंने सावधानी से गुप्त ही रखा है हां इस विषय को जान कर फिर अध्यात्म के जानकार गुरुओं के पास आकर अध्यात्म-विद्या जान सकते हैं। यह पुस्तक पढकर यदि समाज ने कुछ

लाभ लया तो मैं अपनी कृति को सफल समझूंगा।

इसविषयमें मेरेसे कुछ त्रुटि हुई हो तो अध्यात्मी उस दोष को छोड़ कर गुण को ही ग्रहण करें और मुझे सूचित करें जिससे आगामी प्रकाशन में शुद्ध करदीजावे। हमने इस महान विषय को पहिले ही लिखनेका प्रयास किया है इससे गलती संभव है। क्योंकि—

को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।

इस अपार शास्त्र समुद्र में आजकल कौन विमोह को प्राप्त नहीं होता मैं भी तो छद्मस्थ (अल्पज्ञ) हूँ इसलिये दोष रहना संभव है। विज्ञजन मेरे दोषों को क्षमा करें।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।

हसंति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

परकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति संतः

लेखक—

क्षांतिसुधापिपासु

क्षु० सूरिसिंह

स्वाध्यायः परमं तपः

मनुष्यजीवन और पशुजीवनमें अन्तर सिर्फ ज्ञानकी कमी वेशीके कारण है अतः ज्ञानसम्पादन करना मानवजीवन का एक आवश्यक अंग है। ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वैसे तो अनेक साधन है किन्तु उनमें से सबसे सरल साधन शास्त्र–स्वाध्याय है। शास्त्रोंको रुचि-पूर्वक पढ़ने, सुनने मनन करनेसे सैद्धान्तिक, आध्यात्मिक ज्ञान स्वयमेव बढ़ता जाता है। स्व० श्रीमती भूरीबाईजी जैनसिद्धान्तको अच्छी जानकार थीं उनने वह ज्ञान केवल शास्त्रस्वाध्याय के द्वारा प्राप्त किया था। अतः शास्त्रस्वाध्यायका अभ्यास प्रत्येक स्त्री पुरुषको नियमसे करना चाहिये। जो मनुष्य ज्ञानप्रचारमें रुचि रखते हैं उन्हें स्वध्यायकी प्रक्रियाका स्थान स्थान पर विस्तार करना चाहिये।

आदर्श

अन्य व्यक्तिको सुधारनेसे पहिले अपने आपको सुधारो। जो व्यक्ति अपना सुधार नहीं कर सका वह दूसरोंको क्या सुधारेगा।

अपने सुधारके लिये आत्म-निरीक्षण करो और अपनी दूषित विचार-धाराओंको शक्तिभर हटाते जाओ। जब समझ लो कि मेरा चरित्र कुछ उन्नत हुआ है तबही दूसरोंके लिये चेष्टा करो।

यह सब कुछ आध्यात्मिक (निज आत्माका) ज्ञानके द्वारा ही हो सकेगा अतः आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना हमारा आदर्श होना चाहिये।

श्रीवीरजिनाय नमः

अध्यात्म-प्रवेशिका

—:०:—

सिद्धं सदानंदमयं प्रपन्नं
संपूर्णरागादिविकाररहीनम् ।
तेजोमयं स्वात्मजिनं प्रणम्य
विरच्यतेऽध्यात्मप्रवेशिकेयं ।

१ प्रश्न—अध्यात्मज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्माका यथार्थ जानना उसे अध्यात्म-ज्ञान कहते हैं।

२ प्र०—किस आत्माका ध्यान करना चाहिये ?

उ०—शुद्धबुद्ध चिदानंदमय निर्विकार निर्वि-कल्प आत्माका ध्यान करना चाहिए।

३ प्र०—वह शुद्ध बुद्धादि आत्मा कहां पर है?

उ०—वह शुद्धबुद्धात्मा निश्चयसे अपना आत्मा ही है तथापि रागद्वेषादि विकार नष्ट किये हुए शुद्ध बुद्धात्मा लोकके शिखरपर विराजमान हैं।

४ प्र०—क्या उसलोकाग्र-शिखरस्थ आत्माका ध्यान करना चाहिये?

उ०—नहीं, उस शुद्धबुद्ध आत्माका अपनेमें संकल्प करके उसका ध्यान करना चाहिये।

५ प्र०—क्या अपना आत्मा शुद्धबुद्ध है?

उ०—हां, अपना आत्मा निश्चयसे (शक्तिरूपसे) शुद्धबुद्ध परमात्मा है।

६ प्र०—आत्मा खंड रूप है या अखंड है?

उ०—अखंड है, खंडरूप नहीं है।

७ प्र०—अपना आत्मा किस-प्रमाण है?

उ०—आत्मा लोकप्रमाण असंख्यात-प्रदेशी है अथवा यों कहो अपना शरीर जितना है उतना आत्मा है। अपने शरीरमें संकोच विस्तार शक्तिसे रहता है। यथा घड़ेमें दीपक।

८ प्र०—जीव एक हैं कि अनेक ?

उ०—आत्मा इस जगतमें अक्षयानंत संख्या प्रमाण हैं।

९ प्र०—अपने शरीरका स्वामी एक आत्मा है या अनेक हैं ?

उ०—प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर ऐसे दो भेद हैं। प्रत्येक शरीरका स्वामी एक आत्मा होता है। साधारण शरीरमें अनेक आत्मा एक शरीरके स्वामी होते हैं। प्रत्येक शरीरमें स्वामी रूपसे एक रहता है तथापि उस शरीराश्रित अनेक जीव रहते हैं किन्तु वे उस शरीरके स्वामी नहीं होते।

१० प्र०—एक आत्माने जप तप ध्यानादि किया तो उसका फल अन्यको भी मिलता है या नहीं ?

उ०—जो आत्मा जप तप ध्यानादि करता है उस का फल उसीको मिलता है। हर एक आत्मा जैसा करता है वैसा उसका फल भोगता है।

११ प्र०—अपना आत्मा हृदयमें है या नहीं ?

उ०—नहीं, हृदयमें ही नहीं किंतु पैरसे लेकर मस्तक तक पूरे शरीरमें भरा हुआ है।

१२ प्र०—आत्माके प्रदेश कभी कम-अधिक होते हैं या नहीं ?

उ०—आत्माके जितने प्रदेश हैं। वे उतने ही हर समय हर भवमें रहते हैं। कम या अधिक नहीं होते हैं। चींटीके शरीरमें या हाथीके शरीरमें वह असंख्यात-प्रदेश वाला आत्मा अपनी संकोच विस्तार शक्तिसे रहता है। वह असंख्यात-प्रदेशी आत्मा अखंड है, उसका खण्ड नहीं होता।

१३ प्र०—जीवात्माके कितने भेद हैं ?

उ०—संसारी जीवोंके छह भेद हैं। स्थावर, तथा द्वि-इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेंद्रिय और संज्ञी पंचेंद्रिय जीव।

१४ प्र०—मुक्त जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जो अष्ट कर्मोंसे रहित है उसे मुक्त जीव कहते हैं।

१५ प्र०—आत्मा किसे कहते हैं ?

उ०—ज्ञान दर्शन जिसका शुद्ध है उसे आत्मा कहते हैं।

१६ प्र०—आत्माके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं, जीवात्मा और मुक्तात्मा।

१७ प्र०—संसारी आत्मा किसे कहते हैं ?

उ०—जो मिथ्यात्व आदि कर्मोंसे युक्त है उसे संसारी आत्मा कहते हैं।

१८ प्र०—मुक्तात्मा किसे कहते हैं ?

उ०—जो स्वानुभवसहसम्यक्त्वी है उसे मुक्तात्मा कहते हैं। उसके अंतरात्मा और परमात्मा ऐसे दो भेद हैं।

१९ प्र०—अंतरात्मा किसे कहते हैं ?

उ०—जो मिथ्यात्व कर्मका नाश करके सम्यक्त्वी हुआ है तथा जिसे केवलज्ञान नहीं हुआ है उसे अन्तरात्मा कहते हैं। चौथे गुणस्थानसे १२ वें गुणस्थान तक अन्तरात्मा होते हैं। अथवा देह और आत्माका अन्तर अनुभवात्मक जिसे मालूम हुआ है उसे अन्तरात्मा कहते हैं। अथवा सम्यग्दृष्टी छद्मस्थोंको अंतरात्मा कहते हैं।

२० प्र०—परमात्माके कितने भेद हैं ?

उ०—जो संपूर्ण ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मका नाश करके अनंत-चतुष्टय-धारी है लेकिन जिसके अघाति-कर्मका

नाश नहीं हुआ है तथा सशरीरी है उसे सकल परमात्मा कहते हैं।

तथा जो ज्ञानावरणादि घाति तथा अघाति कर्मोंका नाश करके सिद्धशिलापर विराजमान है उसे विकल परमात्मा कहते हैं।

२१ प्र०—कल शब्दका क्या अर्थ है ?

उ०—औदारिकादि पंच-विधि शरीरका नाम कल है। कल सहित तो सकल परमात्मा और कल-रहित विकल परमात्मा है।

२२ प्र०—बहिरात्मा किसे कहते हैं ?

उ०—मिथ्यादृष्टि आत्माको बहिरात्मा कहते हैं। शरीरादि बाह्य वस्तुको अपना स्वरूप समझनेवाला बहिरात्मा है। अथवा जिसकी दृष्टि आत्माके तरफ न होकर बाह्यस्वरूप में है उसे बहिरात्मा कहते हैं

२३ प्र०—शरीर किसे कहते हैं ?

उ०—रूप, रस, गंध, स्पर्शरूप पुद्गल स्कंधोंसे बना हुआ जो औदारिकादि पिण्ड है उसे शरीर कहते हैं।

२४ प्र०—शरीर चेतन है या अचेतन है ?

उ०—पौद्गलिक शरीर अचेतन है।

२५ प्र०—जितने शरीर हैं वे सब ही अचेतन हैं ?

उ०—हां जितने भी शरीर हैं वे सब अचेतन हैं

२६ प्र०—सकल परमात्माके शरीर है फिर उसे परमात्मा क्यों कहते हैं ?

उ०—सकल परमात्माके शरीर अवश्य है किन्तु उस शरीरके ऊपर उसका ममत्व भाव नहीं, मोह नहीं, रागद्वेष नहीं इसलिये उसे मुक्तात्मा-परमात्मा कहते हैं।

२७ प्र०—सकल परमात्माको मुक्तात्मा क्यों कहते हैं ?

उ०—सकल परमात्माके द्रव्यप्राण होते हैं जिससे उसका जीवन है। लेकिन फिर उसे आगे जन्म मरण नहीं है। इसलिये उसे मुक्त तथा जीवन्मुक्त भी कहते हैं।

२८ प्र०—सकल परमात्माको जन्म मरण क्यों नहीं है ?

उ०—सकल परमात्माको रागद्वेष नहीं है। इसलिये उसे जन्म मरण नहीं है और न होगा।

२९ प्र०—परमात्माके और कितने भेद हैं ?

उ०—एक सादि और दूसरा अनादि, ऐसे दो भेद हैं।

३० प्र०—सादि परमात्मा कौन है ?

उ०—जो विकारी कर्मका नाश करके परमात्मा बना है उसे सादि परमात्मा कहते हैं, पहिले शक्ति रूप में था फिर व्यक्तरूप बनगया।

३१ प्र०—उसे परमात्मा किसने बनाया ?

उ०—उसे परमात्मा बनानेवाला दूसरा कोई नहीं, स्वयं है, सर्वज्ञोक्त शास्त्रसे या सद्गुरुके उपदेशसे यथार्थ परमात्माका स्वरूप मालूम होनेपर स्वयं वीतरागी बनतागया जब उसने राग द्वेषको दूर कियातभी वह परमात्मा होगया इसलिए उसे सादि परमात्मा कहते हैं ?

३२ प्र०—अनादि परमात्माका क्या स्वरूप है ?

उ०—जो अनादि कालसे विकारी कर्मसे संबंधित नहीं है। स्वयं-सिद्ध परमात्मा है। उसे अनादि स्वयंसिद्ध परमात्मा कहते हैं।

३३ प्र०—अनादि परमात्माके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं। एक अनादि स्वयं-सिद्ध परमात्मा और दूसरा अनादि परंपरा परमात्मा।

३४ प्र०—अनादिपरंपरा सिद्ध किसे कहते हैं ?

उ०—जो विकारी कर्मका नाश करके अनादि परंपरासे सिद्ध होते आरहे हैं उनको अनादि-परंपरा सिद्ध कहते हैं ।

३५ प्र०—सादि सिद्ध-परमात्माके कितने भेद हैं ?

उ०—सादि परमात्माके अनेक भेद हैं तो भी यहांपर थोड़े भेदोंका वर्णन करूंगा । १ स्वयं-बुद्ध, २ प्रत्येक-बुद्ध, ३ बोधित-बुद्ध ऐसा ज्ञानकी अपेक्षासे तीन भेद हैं ।

३६ प्र०—स्वयंबुद्ध सिद्ध परमात्मा किसे कहते हैं ?

उ०—दूसरेके उपदेशके विना स्वयंही आत्म बोध जिसे होता है उसे स्वयंबुद्ध कहते हैं जैसे तीर्थ-कर सिद्ध ।

३७ प्र०—प्रत्येक-बुद्ध किसको कहते हैं ?

उ०—हरएक कार्य करके उसके अनुभवसे कार्य का बोध जिसे होता है उसे प्रत्येकबुद्ध कहते हैं ।

३८ प्र०—बोधितबुद्ध किसे कहते हैं ?

उ०—दूसरेके उपदेशसे जिसे आत्मबोध होता है उसे बोधित-बुद्ध कहते हैं ।

३९ प्र०—यह कथन किस अपेक्षासे है ?

उ०—यह कथन साक्षात् मोक्ष प्राप्त होनेवाले भवकी अपेक्षासे है ।

४० प्र०—सिद्धमें अन्य भेद भी कोई हैं ?

उ०—कालकी अपेक्षासे, देहकी अपेक्षासे, उपसर्गादिक अपेक्षासे कई भेद होते हैं।

सत्ताधिकार ।

१ प्र०—सत्ता किसे कहते हैं ?

उ०—जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है, सर्वपदार्थ-स्थित है, विश्वरूप है, सप्रतिपक्षस्वरूप है ।

२ प्र० पदार्थ अस्ति किस अपेक्षासे है ?

उ०—स्व-द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासे अस्ति स्वरूप है।

३ प्र०—नास्ति किस अपेक्षासे है ?

उ०—पर-द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासे नास्ति स्वरूप है।

४ प्र०—अस्ति नास्ति युगपत् माननेकी क्या आवश्यकता है ?

उ०—यदि दोनों एक समय न माने जावें तो वस्तु व्यवस्था नहीं बैठ सकती है।

५ प्र०—अास्ति नास्ति युगपत् न माननेसे क्या हानि है ?

उ०—एक वस्तुमें दोनों धर्म एक समयमें पाये जाते हैं इसलिये मानना चाहिये। यदि नहीं माना जाय तो उन दो धर्मोंका अस्तित्व नहीं रहेगा। उनके न रहनेसे वस्तुमें यथार्थता नहीं आती।

६ प्र०—क्या अस्ति नास्ति पक्ष से झगड़ा होता है ?

उ०—हां दोनों ही पक्षपाती होनेसे दोनों ही झगड़े वाले हैं, दोनों ही विकल्पात्मक है, केवल दोनोंसेही तत्वकी सिद्धि नहीं होती।

७ प्र०—तत्व की सिद्धि किस तरह होगी ?

उ०—ये दोनों ही पक्ष विपक्ष होने से दोनोंको संभालने वाला तीसरा एक अवक्तव्य नामका भंग है वह तत्वकी सिद्धिमें साधक होता है।

८ प्र०—ये दोनों अस्ति और नास्ति पक्ष निर्विकल्प को परंपरास कारण हैं या साक्षात् कारण हैं ?

उ०—ये दोनों साक्षात निर्विकल्पके साधन नहीं परंपरासे कारण हैं, साक्षात साधन अवक्तव्य है।

९ प्र०—जो निर्विकल्प को साक्षात् कारण है उसका ही कथन करना चाहिये था ?

उ०—इन दोनों (अस्ति, नास्ति) भंगोंके विना अवक्तव्य भंगकी सिद्धि नहीं होती इसलिए उन पूर्वके दो भंगोंकी जरूरत रही इसलिये उनका कथन भी जरूरी रहा।

१० प्र०—अवक्तव्य भंगसे निर्विकल्प होता है तो इन तीनों भंगोंका ही कथन होना चाहिये था सात भंग क्यों मानते हैं ?

उ०—मुख्य भंग तो तीन हैं इनके ही द्विसंयोगी तीन भंग होते हैं और तीनोंका संयोग होकर एक भंग होता है। उससे आगे भंग नहीं होता। इसलिये सप्त भंगकी ही रचना है। ज्यादा भंग नहीं होते तथा कम भंग भी नहीं होते।

११ प्र०—वे भंग कौन कौनसे हैं उनका नाम कहो ?

उ०—१ अस्ति २ नास्ति ३ अवक्तव्य, ४ अस्तिनास्ति, ५ अस्तिअवक्तव्य, ६ नास्ति अवक्तव्य, ७ अस्तिनास्ति अवक्तव्य, ये सातों भंगों के नाम हैं।

१२ प्र०—अस्ति किसे कहते हैं ? और नास्ति किसे कहते हैं ?

उ०—वस्तु स्व-रूपकी अपेक्षासे है पर-रूपापेक्षासे नहीं है।

१३—प्र० ये दोनों सत्ताके हैं या नहीं ?

उ०—ये दोनों सत्ताके ही हैं।

१४ प्र०—सत्तामें नास्ति भी किस तरह है ?

उ०—सत्ता सप्रतिपक्षी होनेसे उसमें नास्ति भंग आता है।

१५ प्र०—सत्ता एक है या अनेक ?

उ०—सत्ता एक रूप भी है और अनेक रूप भी है। महासत्ता एकरूप है। और इसका प्रतिपक्षी अवान्तर सत्ता है वह अनेक रूप है।

१६ प्र०—महासत्ता किसे कहते हैं ?

उ०—सर्व पदार्थोंमें रहनेवाली सत्ता महासत्ता है

१७ प्र०—अवांतरसत्ता किसे कहते हैं ?

उ०—एक पदार्थमें रहनेवाली सत्ताको अवांतर सत्ता कहते हैं।

१८ प्र०—एक पदार्थमें ये दोनों किस तरह रहती हैं ?

उ०—द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे महासत्ता या

सत्ता-सामान्य कहते हैं। और पर्यायार्थिक नयसे अवांतरसत्ता या सत्ताविशेष कहते हैं।

१६ प्र०—सत्ता किस अपेक्षासे है ?

उ०—द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे या महासत्ताकी अपेक्षासे अस्ति रूप है। और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे या अवांतरसत्ताकी अपेक्षासे नहीं है। वस्तुमें ये दोनों धर्म एक समयमें रहते हैं।

२० प्र०—सत्तामें परस्पर दो विरोधी धर्म कैसे संभवते हैं ?

उ०—हर एक वस्तुमें परस्पर-विरोधी दो धर्म संभवते हैं। यदि इसे नहीं मानोगे तो वस्तु-व्यवस्था नहीं बैठेगी इसलिये दोनों धर्म पाये जाते हैं।

२१ प्र०—वस्तुव्यवस्था क्यों नहीं बैठती ?

उ०—वस्तुमें परस्पर विरोधी दो धर्म नहीं माने जांय तो वस्तु एकरूप ही ठहरेगी, भेद नहीं हो सकेंगे। वस्तु जगतमें एक नहीं, अनेक हैं। इसलिये वस्तु स्व-रूपकी अपेक्षासे है। और पर-रूपमें अपेक्षासे नहीं है। यदि दोनोंको भिन्न नहीं मानोगे तो जो अनेक पदार्थोंकी अपेक्षासे वस्तुके भेद हैं वे भेद परस्पर विरोधी दो धर्म माननेसे ही होते हैं।

वे नहीं होंगे। इसलिये दो धर्म मानने चाहिये।

२२ प्र०—सत्‌को केवल अस्तित्वरूप माननेमें क्या हानि है?

उ०—सत्‌को सर्वथा अस्तिरूप मानोगे तो वस्तुमें परिणमन नहीं होगा। उसे कूटस्थनित्य माननेका प्रसंग आवेगा। इसलिये वस्तुमें अस्तित्व नास्तित्व माननेपर ही पर्यायें होती हैं, परिणमन सिद्ध होता है। इसलिये दोनों धर्म मानना जरूरी है।

२३ प्र०—सत्तामें परस्पर-विरोधी धर्म और कौन से हैं?

उ०—अस्ति-नास्ति, सामान्य-विशेष, एक-अनेक, नित्य-अनित्य, स्थिर-अस्थिर, ध्रौव्य-अध्रौव्य, अनंश-अंश, अखंड-खंड इत्यादि परस्पर-विरोधी धर्म (सापेक्ष विरोध) माने गये हैं।

२४ प्र०—इन सबको माननेकी क्या जरूरत है?

उ०—सबको माने विना सप्तभंगीकी व्यवस्था ठीक नहीं बैठती इसलिये मानना चाहिये।

२५ प्र०—सप्तभंग न हों तो क्या हानि है?

उ०—सप्त भंगके विना वस्तुका यथार्थ स्वरूप नही बनता जिसमें सापेक्ष परस्पर विरोधी धर्म हों

उसकी व्यवस्था ठीक बैठती है, नहीं तो वस्तुका स्वरूप ही बिगड़ जाता है। वस्तु-स्वरूप यथार्थ नहीं होनेसे वह प्रमाण कोटिमें नहीं रह सकता। इसलिये जहां सप्तभंगीकी व्यवस्था बैठती है वहांपर प्रमाणता आती है, अन्यथा नहीं।

२६ प्र०—सप्तभंगमें मुख्य भंग कौन कौन हैं ?

उ०—मुख्य भंग तीन होते हैं। अस्ति, २ नास्ति, ३ अवक्तव्य इनके बिना सप्तभंग नहीं होते। द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भंग मिलकर सात होते हैं।

२७ प्र०—इन भंगोंमेंसे किस भंगसे अध्यात्मतामें गति होती है ?

उ०—अवक्तव्यसे अध्यात्मतामें गति होती है। क्योंकि अस्ति और नास्ति दोनों ही अपना २ पक्ष खींचनेवाले हैं और अवक्तव्य भंग मध्यस्थ रहता है अतः वही अध्यात्मताका कारण है।

२८ प्र०—अस्तिसे अध्यात्ममें गति नहीं होती ?

उ०—नहीं, अस्ति पक्ष वाला अपना पक्षपाती बनता है।

२९ प्र०—नास्तिसे अध्यात्ममें गति होती है या नहीं ?

उ०—नास्ति पक्षवाला भी अपना पक्षपाती बनता है। इसलिये पक्षपातियोंकी अध्यात्मतामें गति नहीं है, निष्पक्ष ही अध्यात्ममें प्रवेश करता है।

३० प्र०—अवक्तव्यसे गति होती है तो उसे ही मानना चाहिये अस्ति नास्ति माननेकी क्या जरूरत है?

उ०—अस्ति नास्ति इन दोनों भंगोंका कथन न किया जाय तो अवक्तव्यकी सिद्धि नहीं होती अस्तिसे वस्तुकी स्वसत्ताकी सिद्धि होती है। और नास्तिसे परकी असत्ता सिद्ध होनेपर ही अवक्तव्यको सिद्धि होती है। मध्यस्थकी भी व्यवस्था तब ही बैठती है कि दो पक्ष सामने आनेपर दोनोंको मानने वाला अवक्तव्य होवे। इसलिये अस्ति नास्ति इन दोनों धर्मोंकी जरूरत है।

३१ प्र०—द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भंगोंको मानने की क्या जरूरत है?

उ०—क्रमसे कथन होने लगे तो द्विसंयोगी और त्रिसंयोगीकी जरूरत है। यदि वस्तुका क्रमसे कथन न किया जाय तो वस्तुके स्वरूपका यथार्थ बोध नहीं हो सकता इसलिये क्रमसे कथन होनेपर

त्रिसंयोगी भंगकी व्यवस्था बैठती है त्रिसंयोगी भंगके लिये द्विसंयोगी भंगोंकी भी उतनी ही जरूरत है।

३२ प्र०—कोई २ दो भंगोको ही मानते हैं, अस्ति और नास्ति इन दो भंगोंसे अध्यात्म कथन करते हैं वह ठीक है या नहीं ?

उ०—सिर्फ दो ही भंगोंसे कथन ठीक तरहसे नहीं होसकता इसलिये दो भंगों द्वारा यथार्थ रूपसे वस्तुका बोध नहीं होता। इस कारण वह कथन ठीक नहीं।

३३ प्र०—वस्तुकी सिद्धिकेलिये सातोंकी जरूरत है ?

उ०—हां! वस्तुकी सिद्धिकेलिये सातोंकी जरूरत है। सात भंगोंसे वस्तुका यथार्थ बोध होता है। उस से ही तत्वज्ञान होता है और अध्यात्म प्रवृत्ति भी होती है। फिर तत्वोपलब्धि या स्वात्मोपलब्धि होती है। इसलिये सात्तों भंगोंसे वस्तुका बोध कर लेना चाहिये।

३४ प्र०—वस्तुकी सिद्धि अध्यात्मरूपसे होती है या नहीं ?

उ०—वस्तुकी सिद्धिके पहले वस्तुका यथार्थ बोध होना चाहिये फिर ध्यान या अध्यात्तासे वस्तु-

की सिद्धि या उपलब्धि होती है। इसलिये तत्वोपलब्धि में अध्यात्ता की जरूरत है और तत्वज्ञानके लिये सप्तभंगोंकी जरूरी है।

३५ प्र०—इन सातों भंगोंमें कौनसे २ भंग विकल्पात्मक हैं और कौनसे भंग निर्विकल्पके साधन हैं ?

उ०—पूर्वके ६ भंग तो विकल्पात्मक हैं और ७ वां भंग ही निर्विकल्पका साधन है। क्योंकि वह किसी विकल्पमें नहीं पड़ता त्रितयात्मक ही क्रमसे माननेसे कोई पक्ष नहीं रहता है। वास्तवमें वैसे तो सब ही भंग विकल्पात्मक हैं। जितने नय पक्ष या भंग हैं वे सब ही विकल्पात्मक हैं। किंतु हमारा उपरोक्त कथन अध्यात्मियोंको समझानेसे लिये कहा गया है।

३६ प्र०—जो निर्विकल्पका साधन है ऐसा सातवां भंगका ही कथन होना चाहिये था ?

उ०—उन ६ भंगोंके बिना ७ वें भंगकी सिद्धि नहीं होती। इसलिये सब भंगोंकी जरूरत है।

३७ प्र०—सप्तभंगोंको नहीं माननेपर वस्तुका यथार्थ बोध होता है या नहीं ?

उ०—सप्तभंगोंसे ज्यादा या कम भंग नहीं हो

सकते वस्तुकी विचारणामें सात ही प्रश्न होते हैं, सात शंकायें होती हैं, सात ही जिज्ञासा होती हैं। और सात ही उत्तर होते हैं। ज्यादा अथवा कम होते ही नहीं । इन सप्तभंगोंका ज्ञान होनेपर वस्तुका यथार्थ बोध होता है।

३८ प्र०—सप्तभंगोंकी प्रवृत्ति द्रव्यमें, गुणमें या पर्यायमें होती है ?

उ०—द्रव्यमें, गुणमें, और पर्याय इन तीनोंमें सप्त भंगोंकी प्रवृत्ति होती है; क्योंकि, तीनों परस्पर अभिन्न स्वरूप हैं। यद्यपि उनका कथन भिन्न रूपसे भी करते हैं तो भी परस्पर सापेक्षके विना कथन नहीं करते। इसलिये द्रव्यमें गुणमें पर्याय इन तीनोंमें प्रवृत्ति होती है।

३९ प्र०—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इनमें प्रवृत्ति होती है या नहीं ?

उ०—जो वस्तु सत् स्वरूप है उसमें सप्तभंग की प्रवृत्ति होती है वह फिर चाहे द्रव्य हो, क्षेत्र हो, काल हो या भाव हो। जहांपर सापेक्ष कथन होगा वहांपर सप्तभंगकी प्रवृत्ति होगी । जहांपर सापेक्ष कथन नहीं वहांपर सप्तभंगकी प्रवृत्ति नहीं होती

यह तात्पर्य समझना।

४० प्र०—सप्तभंगके मूलभंग कितने होते हैं ?

उ०—तीन भंग; उन तीन भंगोंसे ही सप्तभंग होते हैं।

४१ प्र०—क्या सत्ता भी त्रिलक्षणात्मक है ?

उ०—सत्ता भी त्रिलक्षणात्मक है यानी 'उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त' सत्) ऐसा ही श्री तत्वार्थ सूत्र में सत्ताका लक्षण कहा है।

सत्ता केवल ध्रौव्य रूप नहीं, केवल व्यय रूप नहीं केवल उत्पादरूप भी नहीं सत्ता, त्रितयात्मक है इसलिये उसमें सप्तभंगोंकी प्रवृत्ति होती है।

४२ प्र०—सत्ताको उत्पादव्यय रूप मानते हैं क्या ?

उ०—हां कोई २ अध्यात्माभास वाले उत्पत्ति व्यय रूप पर्यायका स्वरूप मानते हैं। जैसे कि द्रव्य सर्वथा नित्य है गुण सर्वथा नित्य हैं पर्याय सर्वथा क्षणवर्ती मानते हैं। ऐसे मानने वाले यथार्थ-तत्त्व-दृष्टि वाले नहीं हैं।

४३ प्र०—द्रव्य सर्वथा नित्य है या नहीं ?

उ०—द्रव्य सर्वथा नित्य नहीं है। जो द्रव्यको

सर्वथा नित्य मानते हैं उनके मतमें द्रव्य कूटस्थ नित्य ठहरता है। कूटस्थ माननेपर परिणमन-रहित होनेसे द्रव्य पर्याय रहित निरर्थक ठहरता है क्योंकि परिणमनमें ही अर्थक्रिया होती है। द्रव्यको अर्थ-क्रिया रहित माननेपर संसार मोक्षकी व्यवस्था नहीं होती तथा दीक्षा शिक्षा उपदेश आदिक निरर्थक ठहरते हैं। इसलिये जैन सिद्धान्तमें द्रव्य नित्यानित्य माना है।

४४ प्र०—क्या द्रव्य परिणमनशील है?

उ०—हां, द्रव्य परिणमनशील है।

४५ प्र०—द्रव्य क्या परिणमन होकर बदलता है?

उ०—समय २ मे द्रव्यका परिणमन जरूर होता है तो भी स्वरूप या स्वभावको छोड़कर अन्य द्रव्यरूप नहीं होता है। सबही द्रव्य अपना २ निज-स्वभाव न छोड़कर परिणमन करते हैं। न कि एक द्रव्य अन्य द्रव्यरूप बदलता है। स्वभावमें हरएक क्षणमें अर्थक्रिया होती है। उससे स्वपर्यायपरिणमन होता है।

४६ प्र०—गुण नित्य है या अनित्य है?

उ०—गुणभी नित्यानित्य है। कई लोग गुण

सर्वथा नित्य और निर्विकार मानते हैं वे गलतीमें हैं। गुणको सर्वथा नित्य मानना मिथ्यात्व है।

४७ प्र०—गुणका परिणमन होता है?

उ०—हां, गुणका परिणमन जरूर होता है।

४८ प्र०—एक गुण अन्य गुणरूप होता है?

उ०—नहीं,एकगुण अपना स्वरूप छोड़कर अन्य गुणरूप कभी नहीं होता। अपने निजस्वभावमें ही परिणमन होता है, सब गुणोंमें स्वभावरूप अर्थक्रिया होती है।

४९ प्र०—पर्यायभी नित्य है?

उ०— हां,पर्यायभी नित्यानित्य है केवल सर्वथा नित्य ही नहीं,केवल सर्वथा अनित्यभी नहीं कथंचित् नित्य, कथंचित् अनित्य है। जो पर्यायको सर्वथा अनित्य ही मानते हैं। वे मूढ हैं। द्रव्य गुण पर्याय स्वरूपही सत्ता है। सत्ता त्रिलक्षणात्मक है। यदि इसे त्रिलक्षणात्मक नहीं मानोगे तो सप्त भंगीकी व्य-वस्था भी नहीं बैठती। स्याद्वादकी सिद्धिभी नहीं होती है तथा उत्पाद-व्ययात्मक उसका लक्षण माननेपर वे उत्पाद और व्यय किसके आधारसे होंगे वह आधार उनसे भिन्न मानोगे तोठीक नहीं बैठता। उन

उत्पत्ति व्ययात्मकहो अधारभी नहीं मानसकते एक समयमें ही उत्पत्ति और व्यय हो गये तो फिर उत्पत्ति किसकी और व्यय भी किसका करोगे ऐसी अवस्थामें वस्तु रहित जग माननेका प्रसंग आता है ये उत्पत्ति और व्यय ध्रौव्यके आधारसे होते हैं ये तीनेभी हर समयमें रहते हैं। इसलिए नित्या-नित्य पर्याय मानना चाहिए तब हो ठीक होता है।

५० प्र०—पर्याय सत्‌रूप है या असत्‌रूप ?

उ०—पर्याय सत्स्वरूप है। असत्-स्वरूप नहीं है। असत् कोई वस्तु ही नहीं है। पर्यायको सत् स्वरूप ही माना है। वस्तु त्रितयात्मक होती है। पर्याय भी त्रियात्मक है अतः वह असत् नहीं है, सत् स्वरूप ही है।

५१ प्र०—क्या सत्‌में अस्ति नास्ति घट सकते हैं ?

उ०—हां सत्‌में अस्ति नास्ति घट सकते हैं।

५२ प्र०—उत्पत्तिमें नास्ति कैसे घटता है ?

उ०—उत्पत्तिमें नास्तिकी योजना इस तरह करना कि 'जीवमें उत्पत्ति नहीं है' इससे यह समझना चाहिये कि, जीव स्वयं अनादि अनंत है उसकी उत्पत्ति नहीं होती।

५३ प्र०—व्ययमें नास्ति किस तरह घट सकता है ?

उ०—व्ययमें नास्ति की योजना इस तरह समझना कि 'जीवका किसी कालमें नाश व्यय नहीं है ।'

५४ प्र०—ध्रौव्यमें नास्ति किस तरह है ?

उ०—ध्रौव्यमें नास्ति इस तरह समझना, 'जीव एक देहमें सदा नहीं रहता' । इस लिये इस अपेक्षासे ध्रुवमें नास्तिपना है ।

५५ प्र०—उत्पत्तिमें अस्तिकी योजना किस तरह घटेगी ?

उ०—वह इस तरह समझना चाहिये कि 'जीव को मोक्ष होने तक एक देहमेंसे च्युत होकर दूसरी देहमें उत्पन्न होना पड़ता है' इस अपेक्षासे उत्पत्तिमें अस्ति घटित होता है ।

५६ प्र०—व्ययमें अस्ति किस तरह घटित होती है ?

उ०—व्ययमें अस्ति इस तरह समझना चाहिये कि 'वह जिस देहमेंसे आया वहांसे व्यय प्राप्त हुआ' । अथवा प्रतिक्षण इस जीवके आत्मिक ऋद्धि विषय (क्षायिक सम्यक्त्व. आदि) मरण होनेपर भी रहते हैं' इस तरह शरीर अपेक्षा व्ययमें भी आत्मिक पर्यायकी अपेक्षा अस्ति है ।

५७ प्र०—ध्रौव्यमें अस्ति नास्ति किस तरह है ?

उ०—वह इस प्रकार समझना कि द्रव्यकी अपेक्षासे जीवका किसी कालमें भी नाश नहीं होता वह त्रिकाल-सिद्ध है। इस प्रकार अस्ति नास्ति समझना चाहिये।

५८ प्र०—अस्ति नास्ति ये दोनों धर्म क्या परस्पर-विरोधी नहीं हैं ?

उ०—इन दोनोंमें परस्पर ऐसा विरोध उत्पन्न नहीं होता जिससे द्रव्य गुण पर्यायमें कोई रोक आजावे।

५९ प्र०—विरोधके कितने भेद हैं ?

उ०—विरोधके तीन भेद हैं। १ सहानवस्था विरोध, २ प्रतिवंध्य प्रतिबंधक, ३ वध्य वधक।

६० प्र०—सहानवस्थान विरोधका परिहार किस तरह है ?

उ०—एक समयमें जिस अपक्षासे अस्ति है उसी अपेक्षासे उस समयमें नास्ति कहनेसे सहानवस्थान दोष आता है किन्तु जिस समय जिस अपेक्षासे अस्ति समय वही अपेक्षा न लेकर अन्य अपेक्षासे नास्ति कहते हैं इसलिये सहानवस्थान दोष नहीं आता

है। जिस समय स्व-अपेक्षासे अस्ति है उसी समय परकी अपेक्षासे नास्ति है। यदि इस प्रकार न माना जाय तो दवात, कलम, चौकी, पुस्तक आदि वस्तुओंमें भेद नहीं बन सकता है। इस लिये स्व-रूप की अपेक्षासे दवात कलम आदि हैं और परकी अपेक्षासे वे नास्ति-स्वरूप हैं इस लिये सहानवस्थान दोष या विरोध नहीं आता है।

६१ प्र०—प्रतिबध्य-प्रतिबंधक विरोध किसे कहते हैं?

उ०—एकसे जो दूसरेको रुकावट उत्पन्न होती है उसे प्रतिबंध्य प्रतिबंधक विरोध कहते हैं। जैसे अग्निसे ठंडक रुक जाती है, या परदेसे प्रकाश रुक जाता है। इस प्रकारका विरोध अस्ति और नास्तिमें नहीं आता है।

६२ प्र०—वध्य-घातक विरोध किसे कहते हैं?

उ०—जिसका बध हो उसे वध्य और जो बध करने वाला है उसे घातक कहते हैं। इन दोनोंमें एक निर्बल दूसरा बलवान ऐसा माना गया है। उस तरह 'अस्तिनास्ति निर्बल और सबल हैं'ऐसा माना नहीं है। इसलिये वध्य-घातक विरोध भी अस्ति नास्तिमें नहीं हैं। अस्ति नास्ति समान धर्म हैं' सापेक्ष

रूपसे रहते हैं' निरपेक्ष नहीं रहते हैं।

६३ प्र०—विधि किसे कहते हैं ?

उ०—अंश कल्पना-रहित निरंश कल्पना को विधि कहते हैं।

६४ प्र०—सत्ता सामान्यमें अंशकल्पना है या नहीं ?

उ०—सत्तासामान्यमें अंशकल्पना नहीं है किन्तु उसका सामान्य परिणमन है।

६५ प्र०—प्रतिषेध किसे कहते हैं ?

उ०—सत्‌की भिन्न २ विभाजित अंश-कल्पनाको प्रतिषेध कहते हैं। विशेष परिणमनकी अपेक्षासे वह एक निरंशरूप वस्तु अनेक भेद वाली हो जाती है और वस्तुमें होने वाला अंशरूप भेद ही प्रतिषेधरूप है।

६६ प्र०—द्रव्यके विधि और प्रतिषेध होते हैं या नहीं ?

उ०—हां, होते हैं। जो महा सत्ता है वह सामान्यरूप है, वह द्रव्यकी विधिरूप है।

६७ प्र०—द्रव्यका प्रतिषेधरूप कौनसा है ?

उ०—द्रव्यकी अवांतर-सत्ता प्रतिषेधरूप है।

६८ प्र०—इन दोनोंको माननेकी क्या जरूरत है ?

उ०—विधि को अस्ति कहते हैं और प्रतिषेधको नास्ति कहते हैं। ये दोनों सप्त भंगके मूल हैं। इसलिये इन दोनोंकी जरूरत है।

६९ प्र०—क्षेत्रके कितने भेद हैं?

उ०—दो हैं, एक सामान्य और दूसरा विशेष।

७० प्र०—सामान्य क्षेत्रका लक्षण क्या है?

उ०— वस्तुके जितने क्षेत्र हैं। उस प्रदेशोंके समुदयात्मक देशको क्षेत्रसामान्य कहते हैं।

७१ प्र०—विशेष क्षेत्र किसे कहते हैं?

उ०—सामान्य क्षेत्रके अंशोंको विशेष क्षेत्र कहते हैं।

७२ प्र०—कालके भेद कितने हैं?

उ०—कालके भी दो भेद हैं। एक सामान्य काल दूसरा विशेष। निश्चित काल (वर्तनारूप काल) को सामान्य कहते हैं। और व्यवहार काल (वर्तमान-भूत भावी) को बिशेष काल कहते हैं।

७३ प्र०—भावके कितने भेद हैं?

उ०—भावके भी दो भेद हैं। १ सामान्य, २ विशेष।

७४ प्र०—भाव किसे कहते हैं?

उ०—परिणमनको भाव कहते हैं अथवा तत्वके स्वरूपकी प्राप्तिकोभी भाव कहते हैं। अथवा शक्तियोंके समूहका नामभी भाव है। अथवा वस्तुके सारको भी भाव कहते हैं।

७५ प्र०—सामान्य भाव किसे कहते हैं?

उ०—विधिरूप परिणमनको सामान्य भाव कहते हैं।

७६ प्र०—विशेषभाव किसे कहते हैं?

उ०—खंडरूप भावको विशेष भाव कहते हैं। यह भाव विशेष, भाव का भेद करने वाला है, विभाग करने वाला है। उसीको व्यतिरेक भी कहते हैं।

७७ प्र०—स्वभाव किसे कहते हैं?

उ०—वस्तुके सामान्य और विशेष भावोंमें जो भाव विवक्षित होता है उसे स्वभाव कहते हैं'

७८ प्र०—परभाव किसे कहते हैं?

उ०—जो भाव विवक्षित नहीं होता उसे परभाव कहते हैं। जिस समयस्वभावकी विवक्षा होती है उस समय परभावकी विवक्षा नहीं रहती है। इसलिए वस्तुमें परभाव का अभाव नहीं समझा जाता

है। इन ही को अस्ति और नास्ति भी कहते हैं। ये दोनों एकही वस्तुमें एक ही समयमें रहते हैं।

द्रव्याधिकार

सत्ता त्रिलक्षणात्मक है वही द्रव्यका भी लक्षण है।वही गुणका है तथा पर्यायका भी लक्षण सापेक्ष रूपसे होसकता है। यह पहिले कहा है।

१ प्र०— द्रव्यकी व्याख्या क्या है ?

उ०—द्रवति तान् तान् गुणपर्यायान् इति द्रव्यं। अर्थात् जो अपने २ निजगुणपर्यायों को प्राप्त होता है उसे द्रव्य कहते हैं। अथवा अनंत गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं।

२ प्र०—द्रव्यके कितने भेद हैं ?

उ०-द्रव्यके ६ भेद हैं। १ जीव द्रव्य, २ पुद्गलद्रव्य ३ धर्मद्रव्य, ४ अधर्म द्रव्य, ५ आकाश द्रव्य ६ काल द्रव्य।

३ प्र०—जीवद्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें मुख्य रूपसे चेतना हो उसे जीव-द्रव्य कहते हैं।

४ प्र०— पुद्गलद्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें मुख्यरूपसे रूपरसगंधस्पर्श हैं। उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं।

५ प्र०—धर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें मुख्य रूपसे गतिहेतुत्वपना है उसे धर्म द्रव्य कहते हैं

६ प्र०—अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें मुख्य रूपसे स्थिति-हेतुत्व हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं।

७ प्र०—आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें मुख्य रूपसे अवगाहनत्व गुण है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।

७ प्र०—काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—मुख्य रूपसे परिणामनहेतुत्व गुण जिसमें हो उसे काल द्रव्य कहते हैं।

६ प्र०—द्रव्य सात्कार है कि निराकार ?

उ०—प्रदेशवत्व गुणकी अपेक्षासे साकार है और बाकी गुणों की अपेक्षासे निराकार है।

१० प्र०— द्रव्यमें अनंत गुण हैं तो क्या संकर दोष नहीं आता ?

उ०—संकर दोष नहीं आता क्योंकि वे सभी गुण अपनी २ स्वतंत्र सत्ता लेकर भिन्न २ रहते हैं। तो भी प्रदेश अपेक्षा अलग २ नहीं होते ।

११ प्र०—द्रव्य सादि सांत है या अनादि अनंत है ?

उ०— द्रव्य सादि सांत नहीं किन्तु द्रव्य अनादि अनंत है।

१२ प्र०—द्रव्य विकारी है या अविकारी ?

उ०—द्रव्य विकारी भी है और निर्विकारी भी है।

१३ प्र०—कौन कौन द्रव्य विकारी हैं ? और कौन निर्विकारी हैं ?

उ०—जीव पुद्गल विकारी भी हैं निर्विकारी भी हैं ।

१४ प्र०—सर्वथा निर्विकारी द्रव्य कौन हैं ?

उ०—धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य तथा कालद्रव्य; ये सब अनादिसे अनंतकाल तक निर्विकारा हैं वे कभी विकारी नहीं होते हैं।

१५ प्र०—जीव द्रव्य कबसे विकारी है ?

उ०—कोई २ जीव अनादि से विकारी हैं।

१६ प्र०—कोई कोई क्यों कहा ?

उ०—कई जीव द्रव्य अनादि कालसे निर्विकारी हैं वे कभी विकारी-कर्म-सम्बन्ध-सहित नहीं हैं। कई जीव अनादि कालसे विकारी थे वेही निर्विकारी साधनोंसे निर्विकारी बन गये हैं। और कई जीव अक्षयानंत जीवराशि अब भी विकारी है।

१७ प्र०—विकार स्वभाव है या विभाव है ?

उ०—विकार विभाव है, स्वभाव नहीं है।

१८ प्र०—विकार कबसे आया ?

उ०—विकार अनादिसे है।

१९ प्र०—विकार अनादिसे कैसे आया ?

उ०—अनादि—कालीन प्रति-पक्षी रूप जो विपक्षी हैं उसके निमित्तसे विकार होता है अथवा सीधे शब्दोंमें कहना हो तो परके निमित्ततासे विकार आता है। विशेष जानकारीके लिए गुरुओं के पास ऐसे गूढ विषयको समझना चाहिये। ऐसे विषय शिष्यकी पात्रता देखकर समझाये जा सकते हैं।

२० प्र०—निमित्तका कभी अभाव भी होता है ?

उ०—नहीं, निमित्त भी शाश्वत है। उसका अभाव नहीं होता।

२१ प्र०—फिर विकार किस तरहसे जायगा ?

उ०—काल-लब्धि आने पर जब करणत्रयी करता है तब विकार दूर हो सकता है।

२२ प्र०—निमित्त रहते हुए भी विकार छूट जाता है?

उ०—हाँ, निमित्त रहते हुए भी विकार छूट जाता है।

२३ प्र०—किस उपायसे विकार छूट जाता है ?

उ०—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसे विकार छूट जाता है।

२४ प्र०—विकार सत् है या असत् है ?

उ०—विकार असत् है, विकार सत् नहीं है ?

२५ प्र०—विकार किस उपायसे जायगा ?

उ०—तत्वज्ञान (भेदविज्ञान) हो जानेपर विकार का नाश होता है।

२६ प्र०—जीवका प्रतिपक्षी कौन है ?

उ०—जीवका प्रतिपक्षी अजीव है।

२७ प्र०—विकार द्रव्य, गुण या पर्याय; इनमेंसे किसमें है ?

उ०—विकार द्रव्य गुण पर्यायात्मक होनेसे 'विकार तीनोंमेंसे अलग २ किसी खास द्रव्य, गुण या पर्यायमें है' ऐसा नहीं कह सकते हैं। तीनोंमें दीखता है।

२८ प्र०—देश, देशांश, गुण, गुणांश, इन चारोंमें है या नहीं ?

उ०—ये चारों भिन्न नहीं हैं, चारों अभिन्न हैं ?

२६ प्र०—गुण और गुणीका कौनसा संबंध है ?

उ०—गुण और गुणीका तादात्म्य संबंध है।

३० प्र०—गुण और पर्यायका कौनसा संबंध है ?

उ०—गुण और पर्यायका भी तादात्म्य संबंध है। अथवा आश्रय आश्रयी संबंध है। वह आश्रय-आश्रयी-भाव संबंध अभिन्न-स्वरूप है, भिन्न नहीं है।

३१ प्र०—गुण गुणका कौनसा संबंध है ?

उ०—समवाय संबंध है या सहयोग संबंध भी है।

३२ प्र०—गुण गुणमें निमित्त नैमित्तिक संबंध है या नहीं ?

उ०—गुण गुणमें निमित्त नैमित्तिक संबंध भी है।

३३ प्र०—कारकका और द्रव्यका कौनसा संबंध है?

उ०—कारकका और कार्यका निश्चयसे तादात्म्य सम्बन्ध है और व्यवहारमें भिन्न होनेसे निमित्त संबंध कहा जाता है। कहीं पर व्यवहारमें सहयोग संबंध है, वहींपर विरोध संबंध भी है। व्यवहारमें अनेक संबंध हैं, लेकिन निश्चयमें तादात्म्य संबंध है।

३४ प्र०—एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कारक होता है या नहीं?

उ०—निश्चयनयकी अपेक्षासे एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कारक नहीं है। व्यवहारमें कारक माना जाता है। सो भी उदास रूपसे कहते हैं। जैसे जीव पुद्गलद्रव्यको धर्मद्रव्य गतिहेतुत्व कहा जाता है अधर्मद्रव्य स्थिति-हेतुत्व कहा जाता है। आकाशद्रव्य अवगाहन-हेतुत्व कहा जाता है, कालद्रव्य वर्तना-हेतुत्व कहा जाता है। अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे रागादि विकारका कर्ता आत्मा मानते हैं। व्यवहारमें पुद्गल कार्योंका भी कर्ता कहा जाता है

जैसे घटपटादिकोंका कर्ता मानते हैं। जब व्यवहारमें पर वस्तुका कर्ता मानते हैं तब उपादान, निमित्त कारणकी अपेक्षासे मानते हैं, पर-वस्तुमें निमित्त कारक भी मानते हैं, यह सब व्यवहारनयकी प्रधानतासे मानते हैं। निश्चयनयकी अपेक्षासे उपादान निमित्त कारणका सम्बन्ध नहीं है। जो लोग निश्चयनयमें भी उपादान निमित्त सम्बन्ध मानते हैं वह ठीक नहीं, सच्चे तत्वज्ञानी ऐसा नहीं मानते हैं।

३५ प्र०—देश किसे कहते हैं ?

उ०—द्रव्यको देश कहते हैं।

३६ प्र०—देशांश किसे कहते हैं ?

उ०—देश यानी द्रव्य, और अंशका अर्थ पर्याय, अतः देशांश द्रव्य पर्यायको कहते हैं।

३७ प्र०—गुण किसे कहते हैं ?

उ०—अन्वयरूपसे द्रव्यके साथ रहनेवालेको गुण कहते हैं।

३८ प्र०—गुणांश किसे कहते हैं ?

उ०—गुणके पर्यायको गुणांश कहते हैं।

३९ प्र०—गुण और द्रव्यमें अंतर क्या है ?

उ०—द्रव्य आश्रयवान है और गुण द्रव्यके

आश्रय हैं, एक द्रव्यमें अनन्त गुण होते हैं।

४० प्र०—द्रव्यके पर्यायवाचक शब्द कौनसे हैं ?

उ०—सत्ता सत, सत्व, सामान्य, द्रव्य, अन्वय वस्तु, अर्थ विधि ये द्रव्यके वाचक शब्द हैं।

४१ प्र०—द्रव्य घटता बढ़ता है या नहीं ?

उ०—द्रव्य न कभी बढ़ता है और न कभी कम होता है।

४२ प्र०—द्रव्य बड़ा और छोटा होता है वह कैसे ?

उ०—द्रव्यके जितने प्रदेश हैं, उतने ही रहते हैं। न बढ़ते हैं न घटते हैं। प्रदेश संकोच और विकोच होते हैं, वह अपनी निज शक्तिसे ही होते हैं किन्तु प्रदेशोंकी संख्या न कम होती है और न बढ़ती है।

४३ प्र०—द्रव्य प्रदेशसे क्या भिन्न हो सकता है ?

उ०—पर्यायसे द्रव्य अलग नहीं होता तथा द्रव्य भी पर्यायसे अलग नहीं होता है, दोनोंका तादात्म्य संबंध है।

४४ प्र०—पर्याय गुणके साथ रहते हैं या नहीं ?

उ०—हाँ, पर्याय गुणके साथ सदाकाल सतत रहते हैं। पर्याय छोड़कर गुण एक समय भी नहीं

रहता है, कोई न कोई पर्याय रहती है। यद्यपि पर्याय क्षणवर्ती है तो भी पर्याय भी अन्वय रूपसे रहती है।

४५ प्र०—पर्याय गुणके होते हैं, द्रव्यके नहीं। फिर द्रव्यपर्याय किस तरह घटित करोगे?

उ०—द्रव्यमें गुण दो प्रकारके होते हैं। भाववती क्रियावान गुण है और क्रियावती क्रियावान गुण हैं। क्रियावती शक्तिरूप पर्याय द्रव्य-पर्याय होते हैं। और भाववती क्रियारूप पर्याय गुण-पर्याय कहलाते हैं। भाववती क्रिया तो सब गुणकी होती है तथा प्रदेशवत्वगुणकी पर्याय क्रियावती शक्ति जो होती है वही द्रव्य-पर्याय है जैसे नर नारकादि पर्यायें द्रव्य-पर्याय कहलाती हैं। तथा ज्ञानादिक गुणोंकी पर्यायें गुण-पर्यायें कहलाती हैं, इस तरहका ही अंतर है। उसी प्रदेशवत्वगुणकी पर्यायको द्रव्यपर्याय तथा व्यंजनपर्याय भी कहते हैं। अर्थपर्यायको गुण पर्याय कहते हैं। इस प्रकार द्रव्यपर्याय और गुण-पर्यायका भेद है।

४६ प्र०—प्रदेशवत्वगुणमें अर्थपर्याय है या नहीं?

उ०—प्रदेशवत्व गुणकी पर्याय गुणपर्यायरूप है,

उसकी पर्यायें भी अर्थक्रिया तथा व्यंजन पर्याय रूप है। उस प्रदेशवत्वगुणके भाववती पर्यायें भी होती हैं मुख्य रूपसे व्यंजन पर्यायें हैं तो भी भाववती या अर्थवती क्रिया (पर्याय) भी होती है। इस गुणके दोनों पर्यायें होती हैं इसलिये द्रव्यपर्याय और व्यंजनपर्याय दोनों घटित होती हैं। इसलिये देश, देशांश, गुण, गुणांश सभी घटित होते हैं।

४७ प्र०—द्रव्य-पर्याय क्षणवर्ती है या नहीं ?

उ०—द्रव्य-पर्याय क्षणवर्ती भी है और शाश्वत भी है दोनों तरहके द्रव्यपर्याय हैं। जैसे सिद्ध परमात्माकी जो पुरुषाकार पर्याय है वह तो शाश्वत रहती है और संसारमें एक श्वासमें १८ बार जनन मरण करनेवाले निगोदपर्यायमें क्षणिकपना सिद्ध होता है। सिद्धपर्यायमें—वही शाश्वती पर्यायमें भी अर्थक्रिया परिणमन होती है।

४८ प्र०—स्वभाव व्यंजन पर्याय कैसी है ?

उ०—स्वभाव व्यंजनपर्याय सिद्धपर्याय रूप है।

४९ प्र०—सिद्ध पर्यायमें आकार कौनसा होता है ?

उ०—सिद्धपर्यायमें पुरुषाकार रहता है। अंतिम

शरीर जिस आकारका होता है उससे किंचित् न्यून उसी आकारका उसी अवगाहनका पुरुषाकार सिद्ध पर्यायमें रहता है उसीको स्वभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। जो कोई स्वभाव व्यंजनपर्याय नहीं मानते हैं वे भूलमें हैं।

गुणाधिकार

१ प्र०—गुण किसे कहते हैं ?

उ०—जो द्रव्यके साथ अन्वय रूपसे रहता है उसे गुण कहते हैं। 'अन्वयिनो गुणाः।'

२ प्र०—गुण नित्य है या अनित्य है ?

उ०—गुण नित्यानित्य है। केवल नित्य नहीं, केवल अनित्य नहीं, नित्यपरिणमनशील है।

३ प्र०—गुणके भेद कितने हैं ?

उ०—गुणके सामान्य और विशेष ये दोनों भेद हैं।

४ प्र०—सामान्यगुण किसे कहते हैं ?

उ०—जो सब द्रव्योंमें रहते हैं उसे सामान्य (साधारण) कहते हैं।

५ प्र०—विशेष गुण किसे कहते हैं ?

उ०—जो एक ही द्रव्यमें मुख्य रूपसे रहता है दूसरे द्रव्यमें नहीं रहता उसे विशेष गुण कहते हैं।

६ प्र०—आत्मामें विशेष गुण कौनसा है ?

उ०—आत्मामें विशेष गुण चेतना है।

७ प्र०—साधारण गुण कौनसे हैं ?

उ०—द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व आदि अनन्त सामान्य गुण हैं।

८ प्र०—चेतनागुण किसे कहते हैं ?

उ०—ज्ञान दर्शनको चेतना कहते हैं।

९ प्र०—पुद्गलमें विशेष गुण कौनसा है ?

उ०—पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये विशेष गुण होते हैं।

१० प्र०—विशेष गुण एक रहता है या अनेक ?

उ०—विशेष गुण एक ही रहता है।

११ प्र०—रूपादि चार गुणोंका संग्रह किस तरह किया है ?

उ०—पुद्गलका एक ही मूर्तत्वगुण है उस मूर्तत्वके चार भेद किये हैं वर्ण रस गंध और स्पर्श ये चार भेद किये हैं। क्योंकि पांच रस, पांच वर्ण, दो गंध, ८ स्पर्श इत्यादि उनका भेद करनेसे उनको गुणका आरोप करते हैं। जिसका भेद किया जाता है उसे गुणकी संज्ञा आती है क्योंकि पर्यायका नाम ही भेद है भेद पर्यायका नहीं करते,गुणका भेद ही पर्याय करके करते हैं।

१२ प्र०—धर्म द्रव्यमें कौनसा विशेष गुण है ?

उ०—धर्म द्रव्यमें गतिहेतुत्व विशेष गुण है।

१३ प्र०—अधर्म द्रव्यमें विशेष गुण कौनसा है ?

उ०—अधर्म द्रव्यमें स्थिति-हेतुत्व विशेष गुण है।

१४ प्र०—आकाश द्रव्यमें विशेष गुण कौनसा है ?

उ०—आकाश द्रव्यमें अवगाहनत्व विशेष गुण है।

१५ प्र०—कालद्रव्यमें कौनसा विशेष गुण है ?

उ०—कालद्रव्यमें वर्तना गुण विशेष गुण है।

१६ प्र०—जीव और पुद्गलमें गतित्व गुण है फिर वह गुण धर्मद्रव्यमें मुख्य कैसे है ?

उ०—जीवमें और पुद्गलमें गतित्व है तो भी गति-हेतुत्व गुण जीव, पुद्गलमें नहीं है, गतिहेतुत्व गुण धर्मद्रव्यका ही विशेष गुण है।

१७ प्र०—जीव पुद्गलमें स्थितित्व गुण है फिर वह गुण अधर्मद्रव्यका विशेष गुण कैसे है?

उ०—जीव और पुद्गलमें स्थिति गुण है तो स्थिति-हेतुत्व गुण नहीं है। वह स्थिति हेतुत्व गुण अधर्म द्रव्यमें है। वह स्थिति-हेतुत्व गुण जीव पुद्गलमें नहीं है।

१८ प्र०—जीव पुद्गलमें अवगाहनत्व गुण है फिर वह आकाशद्रव्यका विशेष गुण कैसे है?

उ०—जीव और पुद्गलमें अवगाहनत्व गुण है किंतु अवगाहनहेतुत्व जीवपुद्गलमें नहीं है। वह गुण आकाशद्रव्यमें ही है।

१९ प्र०—जीव और पुद्गल आदि सब द्रव्योंमें परिणमनपणा है फिर काल द्रव्यमें ही वर्तनागुण मुख्य क्यों माना है?

उ०—जीवादिक सब द्रव्योंमें परिवर्तन नामका गुण है तो भी वर्तनाहेतुत्व गुण एक कालमें ही है इसलिये उसे कालद्रव्यका मुख्य गुण माना है।

२० प्र०—इस उपरोक्त कथनसे एक द्रव्यका कारक दूसरा द्रव्य होता है न ?

उ०—समर्थ रूपसे नहीं, उदासीन रूपसे निमित्त कारक माना जाता है।

२१ प्र०—ज्ञानका विषय कौनसा है ?

उ०—ज्ञान स्व-परको विषय करता है।

२२ प्र०—ज्ञान स्वयं ज्ञेय है या नहीं ?

उ०—ज्ञान स्वयं ज्ञेय भी है, और पुद्गलादि पर-वस्तु भी ज्ञेय हैं।

२३ प्र०—ज्ञान साकार है, कि निराकार ?

उ०—ज्ञान साकार भी है, और निराकार भी है ज्ञान जब पर-वस्तुको जानता है तब उस पर-वस्तुके आकारको ग्रहण करता है इसलिये उसे साकार कहते हैं। और जब पर-वस्तुको नहीं जानता तब उसे स्वज्ञेयकी अपेक्षासे निराकार कहते हैं।

२४ प्र०—ज्ञान ज्ञेयाकारको ग्रहण करता है, तद्रूप होता है या नहीं ?

उ०—ज्ञान परज्ञेयका आकार ग्रहण करता है, तब उसके आकाररूप बनता है तो भी तद्रूप बनता

नहीं है। परन्तु जब स्वज्ञेयको जानता है तब तद्रूप बनता है।

२५ प्र०—स्वज्ञेयमें साकार है या निराकार?

उ०—स्वज्ञेयकी अपेक्षासे भी जब निज द्रव्यको ज्ञेय करता है तब साकार कहलाता है और स्वगुण को जब विषय करता है तब वह निराकार तद्रूपी बन जाता है।

२६ प्र०—ज्ञानका स्वभाव क्या है?

उ०—ज्ञानका स्वभाव स्व-परको एक समयमें जाननेका है। जो ज्ञानका स्वभाव केवल जाननामात्र कहते हैं वे अभी तत्वज्ञानी नहीं हैं क्योंकि उनने ज्ञानका यथार्थ स्वरूप नहीं जाना है।

२७ प्र०—ज्ञानका विभाव होता है या नहीं?

उ०—ज्ञानकी परआकारके ऊपर ममता होनेसे विभाव होता है।

२८ प्र०—विभाव कब तब रहता है?

उ०—विभाव तब तक रहता है जब तक मिथ्यात्व कर्मसे युक्त है।

२९ प्र०—विभाव ज्ञानका गुण है या दोष है?

उ०—विभाव यह ज्ञानका दोष है, गुण नहीं।

३० प्र०—विभाव किस संबंधसे है ?

उ०—विभाव निमित्तके सहयोगसे होता है।

३१ प्र०—निमित्तका अभाव कभी होता है क्या ?

उ०—निमित्तका अभाव नहीं होता है।

३२ प्र०—निमित्तका अभाव तो होता नहीं फिर विभावका भी अभाव होता है या नहीं ?

उ०—निमित्तका अभाव तो होता नहीं तोभी विभाव का अभाव होता है, विभाव सत् स्वरूप नहीं है। विभाव विकार है, यह विकार निमित्त संबंधसे आया है। निमित्त नैमित्तिक संबंधको अच्छी तरह जाननेके बाद विभाव नहीं रहता।

३३ प्र०—निमित्त नैमित्तिकका भेद-विज्ञान कब होता है ?

उ०—निमित्त नैमित्तिक संबंधका ज्ञान गुरुओंके कृपा प्रसादसे होता है। निमित्त नैमित्तिक संबंधका भेद-ज्ञान प्राप्त होनेपर अज्ञान नहीं रहता उसी समय विभाव चलाजाता है।

३४ प्र०—सद्गुरुके बिना यह भेदविज्ञान होता है या नहीं ?

उ०—स्वयंबुद्धोंको भी अपने आप भेदविज्ञान होता है।

३५ प्र०—स्वयं बुद्धपनाकी योग्यता कब आती है?

उ०—कई जीवोंको तो स्वयंसिद्ध स्वयंबुद्धपना है। जो संसार-चक्रमें पड़े हैं उनको आसन्न-काललब्धि आनेपर आता है। जिस समय वह लब्धि आती है उस समय जिसको विना गुरुके बोध होता है उसे स्वयंबुद्ध कहते हैं और जिसको काललब्धि आनेपरभी सद्गुरुके उपदेश निमित्तसे बोध होता है उसे बोधितबुद्ध कहते हैं। ऐसे बोधित बुद्धों या प्रत्येक बुद्धोंको बोध सद्गुरुकी कृपासे मिला है ऐसा व्यवहारमें कहते हैं। निश्चयकी अपेक्षासे सारे स्वयंबुद्धही है। परका संबंध है वहां ज्ञाता नहीं इसलिये निश्चय है।

३६ प्र०—ज्ञान का स्वपरको एक समयमें जानना स्वभाव है या नहीं?

उ०—स्वपरको एक समयमें जानना यह ज्ञान का स्वभाव है।

३७ प्र०—स्वभाव अनादिकाल से है या नहीं?

उ०—अनादिकालसे स्वभावकी विभाव परणति

हो रही है। जबतक आत्माको अनुभूति नहीं होती तबतक ज्ञानका स्वभाव परिणमन नहीं होता।

३८ प्र०—मिथ्यात्व जबतक है तबतक यथार्थ ज्ञान होता है या नहीं ?

उ०—जबतक मिथ्यात्व है तबतक ज्ञान यथार्थ वस्तुस्वरूप को नहीं जानता। अतः उसे मिथ्या या अज्ञान कहते हैं।

३९ प्र०—अज्ञान दोष है या नहीं ?

उ०—अज्ञान दोष है, गुण नहीं है।

४० प्र०—गुणमें विकार होता है या नहीं ?

उ०—गुणमें निश्चयनयकी अपेक्षासे देखा जाय तो विकार नहीं कहा जाता है। तो भी गुण अनादि काल से विकारी है। वह उनका विकार स्वभाव नहीं तो भी विभावरूप विकार है। इसलिये अनादिसे द्रव्यगुण पर्याय विकारी है। गुण निर्विकारी और पर्याय विकारी हो ऐसा कभीभी नहीं हो सकता। क्योंकि तीनोंकी अभिन्नता है। इसलिये तीनों विकारी होंगे या नहीं तो तीनों निर्विकारी होंगे।

४१ प्र०—गुण त्रिकाल नित्य है या नहीं ?

उ०—गुण त्रिकाल नित्य है। गुणका अभाव

कभी नहीं होता। यदि गुणका अभावभी मानोगे तो गुणी का भी अभाव मानना पड़ेगा। इसलिये नित्य है नित्य होते हुये भी परिणमनशील है।

४२ प्र—ज्ञानगुण विकारी होता है तो द्रव्य भी विकारी होता है या नहीं ?

उ०—द्रव्य गुण पर्याय तीनों ही विकारी होजाते हैं। जबकि तीनों ही अभिन्नरूप हैं तो एक साथ तीनों ही विकारी और निर्विकारी मानना न्याय है। इसलिये द्रव्यगुण दोनों हमेशह निर्विकारी और पर्याय विकारी ऐसा मानना गलत और मिथ्यात्व-युक्तवचन है।

४३ प्र०—गुण सत् है या असत् है ?

उ०—गुण सत्-स्वरूपी है असत् नहीं। गुण नित्य तथा परिणाम शील है। सत् नित्य परिणमनरूप ही है।

४४ प्र०—ज्ञान गुणके पर्याय कौनकौन से हैं।

उ०—मति श्रुत अवधि मनपर्यय केवल ये सब पर्याय हैं।

४५ ०—मति ज्ञान को गुण भी कहा है वह कैसे ?

उ०—जब मतिज्ञानके भेद करते हैं तब पर्याय

में गुणका आरोप करते हैं।

४६ प्र०—श्रुत ज्ञानके भी जब भेद करते हैं तब पर्यायमें गुणका आरोप करते हैं क्या ?

उ०—जो कोई भी ज्ञानगुण हो या दूसरा गुण का पर्याय हो उसका जब भेद किया जायगा तब उसका पर्यायमें भी गुणारोप करके ही भेद करते हैं

४७ प्र०—आत्माका अनुभव किस ज्ञानसे होता है

उ०—आत्माका यथार्थ अनुभव श्रुत ज्ञानसे होता है। मति ज्ञानसे तथा अवधि, मनपर्याय ज्ञान सेभी नहीं होता।

४८ प्र०—मतिज्ञान से आत्माका अनुभव क्यों नहीं होता ?

उ०—मति ज्ञान पांचइन्द्रियों तथा मनसे होता है। तो भी वह मर्तपदार्थको ही जानता है इंद्रियोंसे जो ज्ञान होता है वह मूर्तपदार्थका ही होता है। अमूर्तपदार्थोंका मतिज्ञान विषय नहीं करता।

४९ प्र०—इंद्रियोंसे कौनसा ज्ञान होता है ?

उ०—इंद्रियोंसे अवग्रह ज्ञान ही होता है ईहा अवाय और धारणा यह इंद्रियावलंबन करने वाले में मनसे होते हैं

५० प्र०—इंद्रियोंसे आत्मज्ञान नहीं होता है ?

उ०—इंद्रियोंसे आत्माका अनुभवात्मक ज्ञान नहीं होता है । इसलिये मतिज्ञानमे आत्माका अनुभव नहीं होता है । आत्मा अमूर्त है । इसलिये मतिज्ञानसे स्वानुभव नहीं होता ।

५१ प्र०—मतिज्ञानमें इंद्रियों की प्रवृत्ति है । इंद्रियां तो स्वानुभव नहीं करतीं लेकिन मनसे भी मतिज्ञान होता है । उस मनसे तो स्वानुभव होता है या नहीं ?

उ०—मतिज्ञानमें जो इंद्रियावलंबी मन है उस मनसे बाह्यके मूर्त पदार्थोंके ईहन अवाय और धारणा ये भी पर्यायें होती हैं । इससे स्वानुभव नहीं होता ।

५२ प्र०—ईहा, अवाय, और धारणा ये इंद्रियोंसे नहीं होते ?

उ०— ईहा अवाय और धारणा इंद्रियग्राह्य विषयोंका जबतक अवलंबन रहता है तबतक इंद्रियों का अवलंवन लेकर मनमें ईहा, अवाय और धारणा ये तीनों पर्यायें होती हैं । अर्थात् इंद्रिय पूर्वक मनसे ये तीनों पर्यायें होती हैं ।

५३ प्र०—इन्द्रियोंसे ईहादिज्ञान होते हैं ?

उ०—नहीं, मनसे ही होते हैं। केवल इंद्रियोंकी निमित्तका मानी है।

५४ प्र०—इन्द्रियोंसे स्वनुभव होता है या नहीं ?

उ०—इंद्रियोंसे आत्मानुभव नहीं होता क्योंकि इंद्रियां मूर्तपदार्थको जानती हैं, अमूर्त पदार्थको नहीं जानतीं। मन ही मूर्त और अमूर्त पदार्थोंको जानता है।

५५ प्र०—मतिज्ञानमें मनसे स्वानुभव होता है या नहीं ?

उ०—कोई २ आचार्य मतिज्ञानमें स्वात्मानुभूति की सन्मुखता मानते हैं। और कहीं २ पर स्वात्मानुभूतिकी सन्मुखता मानी है यह सब कथन सापेक्षतासे माना है; क्योंकि मतिमें हो या श्रुतज्ञानमें हो मन इंद्रियोंका अवलंबन छोड़कर इंद्रियातीत होकर स्वात्मा का अनुभव लेता है। उस समय मतिज्ञानपूर्वक या श्रुतज्ञानपूर्वक स्वात्मानुभव माना है इसलिये उपचारसे मतिज्ञानसे स्वात्माका अनुभव माना है।

५५ प्र०—मन अतीन्द्रिय होता है क्या ?

उ०—हाँ भावमन अतीन्द्रिय-स्वरूपी स्वात्माका अनुभव लेता है।

५६ प्र०—ज्ञान स्वरूप मन है क्या ?

उ०—हां, मन और ज्ञान इनमें शाब्दिक अन्तर है अर्थमें अन्तर नहीं है दोनों एक पर्याय शब्द हैं।

५७ प्र०—मन संकल्प विकल्प रूप है या नहीं ?

उ०—नहीं, मन संकल्प विकल्प रूप नहीं। संकल्प विकल्पका आधार भूत है।

५८ प्र०—मन साकार है या निराकार ?

उ०—मन साकार है वह पर-ज्ञेयकी अपेक्षासे। स्वज्ञयकी अपेक्षासे निराकार है।

५९ प्र०—ज्ञान या मन ज्ञेयाकार और ज्ञेयरूप होता है या नहीं ?

उ०—मन ज्ञेयाकार और तद्रूप होता भी है, नहीं भी होता है। खुलासा-परज्ञेयाकारको ग्रहण करता है तो भी तद्रूप नहीं होता और स्वज्ञेयाकार होतेहुए भी तद्रूप ही होता है। तथा स्वज्ञेयमें निराकार और तद्रूपी होता है।

६० प्र०—श्रुतज्ञानमें और केवलज्ञानमें स्वानुभूतिकी अपेक्षासे क्या अंतर है ?

उ०—श्रुतज्ञानके स्वानुभूति समयमें और केवल ज्ञानकी स्वात्मानुभूतिमें कुछ अन्तर नहीं है स्वानुभव की अपेक्षासे दोनों समान हैं तो भी एक समयमें स्वपर-ग्राहिता में अन्तर है। श्रुतज्ञानमें एक समय में ज्ञान एकोपयोगी होता है और केवल ज्ञानमें स्व-परोपयोग याना दोनों उपयोग एक समयमें होता है तथा व्यवहार शब्दोंमें भी अन्तर है क्योंकि श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है। ज्ञानकी अपेक्षा समान हैं।

६१ प्र०—ज्ञान स्वतः प्रमाण है या परसे प्रमाण है ?

उ०—ज्ञान स्वतः प्रमाण है। अनभ्यस्त विषयमें परसे प्रमाण है। अभ्यस्त विषयमें स्वतः प्रमाण है।

६२ प्र०—स्वभाव ज्ञान स्वतः प्रमाण है या नहीं ?

उ०—स्वभाव ज्ञान स्वतः प्रमाण है ?

६३ प्र०—ज्ञान स्वभावरूप है विभावरूप है ?

उ०—जबतक मिथ्यात्व कर्मका संबध है तब तक ज्ञान विभाव ज्ञान है। और मिथ्यात्व कर्म संबन्ध

रहित शुद्ध ज्ञान स्वभावात्मक है। तथा क्षयोपशमावस्थामें सम्यक्त्वसहित दशामें उसे छद्मस्थ कहते हैं।

६४ प्र०—स्वभाव ज्ञान किसे कहते हैं?

उ०—जो पर-ज्ञेयको अपना नहीं मानता उसे स्वभाव ज्ञान कहते हैं या ऐसे भी कहो कि जो एक समयमें स्व-पर दोनोंका उपयोगी है उसे स्वभाव ज्ञान कहते हैं।

६५ प्र०—विभाव ज्ञान किसे कहते हैं?

उ०—जो ज्ञेयको तथा उस आकारको अपना मानता है उसे विभाव कहते हैं।

६६ प्र०—जिस ज्ञानमें निमित्त नैमित्तिक संबंध है उसे क्या कहते हैं?

उ०—जो ज्ञान निमित्त नैमित्तिकको एकत्व रूप से मानता है उसे विभाव कहते हैं और जो भेद मानता है उसे स्वभाव ज्ञान कहते हैं।

६७ प्र०—गुण त्रैकालिक नित्य है? या नहीं?

उ०—गुण त्रिकाल-नित्य भी है और परिणमन भी होता है। परिणमन-रहित कूटस्थ-नित्य नहीं

मानते हैं गुण परिणमन-शील नित्य माना है। अर्थात् नित्या-नित्य माना है।

६८ प्र०—गुण विकारी है या नहीं ?

उ०—जबतक विभाव रूपमें है तब गुण विकारी है और उसके पर्याय भी विकारो हैं।

६९ प्र०—गुण विकारी होता है तो उसका नाश नहीं होता है ?

उ०—गुण विकारो होनेसे नाश नहीं होता है। 'जो विकारी होता है उसका नाश होता है'। ऐसा कोई अविनाभावी सम्बन्ध नहीं है विकारमें नाश होनेकी जरूरत नहीं है। निगोदमें सर्वजघन्य ज्ञान रहता है और केवलीको सर्व्वोत्कृष्ट होता है।

७० प्र०—गुणमें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद हैं या पर्यायमें भेद होता है ?

उ०—गुणमें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं हो तो पर्यायमें कहांसे आवेगा ? गुणमें विकार नहीं मानने पर पर्यायमें भी विकार नहीं आना चाहिये जैसा गुणहो वैसाही पर्याय होता है। इसलिये गुण में विकार होनेसे पर्यायमें भी विकार होता है। गुणमें विकार नहीं होने पर पर्यायमें विकार नहीं

होता है जैसे सिद्ध परमात्माका ज्ञानगुण ज्ञानपर्याय सब निर्विकारी है।

७१ प्र०---क्या द्रव्यभी विकारी है ?

उ०—हां, द्रव्य भी संसार अवस्थामें विकारी है इसलिये संसार-वंधन होता है। यदि संसार-वंधन द्रव्यको तथा गुणको न मानकर पर्यायमें माना जाय तो ठीक नहीं क्योंकि पर्याय क्षणविध्वंसी है फिर बंधन किसे होगा तथा संसार किसे या विकार किसे तथा वंधनका फल भी किसे ? जो एक समय-वर्ती पर्याय है उसे विकार क्या करेगा ? तथा विकारका फल भी किसे मिलेगा ? निष्फल वंधनसे संसारका सुख दुःख विकारका फल किसमें सिद्ध करोगे ? इसलिये समयवर्ती पर्यायमें ही विकार मानना मूढता है।

७२ प्र०—पर्यायमें विकार मानना मूढ़ता कैसे है ?

उ०—पर्याय गुणसे भिन्न नहीं, पर्याय द्रव्यसे भिन्न नहीं है। द्रव्य गुण पर्याय त्रितयात्मक ही पदार्थ है। इसलिये द्रव्य और गुण निर्विकारी और पर्याय विकारी कभी भी नहीं होती जो तीनों

को भिन्न मानकर पर्यायको उत्पन्न-विध्वंसी मानते हुये संसार-बंधनका फलभी पर्यायमें मानता है वह मूढ है वस्तुविज्ञानी नहीं, वस्तु स्थितिका ज्ञानी नहीं है। गुण निर्विकारी और पर्याय विकारी होने का सिद्धान्त जिनका है वे जिनमतसे भिन्न हैं वे जैनी नहीं हैं, जैनाभास हैं।

द्रव्य और गुण निर्विकारी होनेपर पर्याय निर्विकारी होती है द्रव्य गुण विकारी होनेपर पर्याय भी विकारी होती है ऐसा ही नियम है यह सिद्धान्त वचन है यही सत्य सिद्धान्त है।

पर्यायाधिकार

१ प्र०—पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो परिणमनरूप क्रिया है उसे पर्याय कहते हैं।

२ प्र०—पर्यायके कितने भेद हैं ?

उ०—पर्यायके गुणपर्याय द्रव्यपर्याय आदि भेद हैं।

३ प्र०—गुणपर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो गुणका परिणमन है उसे गुणपर्याय कहते हैं।

४ प्र०—गुण पर्यायके भेद कितने हैं ?

उ०—स्वभावगुण-पर्याय और विभावगुण-पर्याय ये दो भेद हैं।

५ प्र०—स्वभावगुण पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो स्वभावरूप परिणमन होता है उसे स्वभाव गुणपर्याय कहते हैं।

६ प्र०—विभावगुण पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो विकार रूप होकर व्यतिरेकरूप पर्याय होते हैं उसे विभावगुणपर्याय कहते हैं।

७ प्र०—गुणपर्यायका दूसरा नाम कौनसा है ?

उ०—गुणपर्यायको अर्थपर्याय भी कहते हैं।

८ प्र०—द्रव्य पर्यायके कितने भेद हैं ?

उ०—द्रव्य पर्यायके भी स्वभाव-द्रव्य-पर्याय और विभावद्रव्य-पर्याय ऐसे दो भेद हैं तथा द्रव्य-पर्यायको व्यंजनपर्याय भी कहते हैं।

९ प्र०—स्वभाव व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो द्रव्यका स्वभाव रूप परिणमन होता

है। उसे स्वभाव व्यंजन-पर्याय कहते हैं। जैसे आत्माका पुरुषाकार सिद्ध पर्याय।

१० प्र०—विभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—द्रव्यका विकाररूप से होने वाले परिणमन को विभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं। जैसे जीव के नर, नारक, तिर्यंच, देव इत्यादिरूप आकारको विभावव्यञ्जनपर्याय कहते हैं।

११ प्र०—यह विभावव्यंजनपर्याय किन २ द्रव्यों के होती है।

उ०—विभाव व्यंजन पर्याय जीव और पुद्गल द्रव्यके होती है धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्योंको नहीं होती है। इन चार द्रव्योंकी स्वभाव व्यंजन पर्यायही होती है। मुक्त जीवोंका भी स्वभाव व्यंजन पर्याय होती है। विभाव व्यंजन पर्याय उनकी नहीं होती।

१२ प्र०—पर्याय क्रमवर्ती और व्यतिरेक कब होती हैं ?

उ०—संसारी विकारी जीवोंको क्रमवर्तिपना तथा व्यतिरेक दोनों पर्यायें होती हैं। मुक्त जीवोंकी तथा शुद्ध द्रव्योंकी क्रमवर्ती रूप पर्याय होती

हैं। व्यतिरेकरूप पर्याय नहीं होती है ।

१३ प्र०—व्यतिरेक पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो पहिले था उस रूप हो या उसके विसदृशरूप हो उसे व्यतिरेक पर्याय कहते हैं।

१४ प्र०—व्यतिरेक पर्यायमें विसदृशपना ही होता है ?

उ०—व्यतिरेक रूप पर्यायमें विसदृशपना मुख्य रूपसे होता है और सदृशरूप पर्याय गौणरूपसे रहता है। विकारीपर्यायमें सदृशरूप पर्याय तथा विसदृशरूप पर्याय दोनों ही रहती हैं।

१५ प्र०—क्रमवर्ती पर्यायमें व्यतिरेकपन है या नहीं ?

उ०—क्रमवर्तीपना शुद्ध द्रव्यमें तथा अशुद्ध द्रव्यमें होता है। यह व्यतिरेक पर्याय नियमसे क्रमवर्ती होती है इसलिये अशुद्ध द्रव्यगुणमें दोनों पर्यायें होती हैं। और शुद्ध द्रव्यगुणोंमें क्रमवर्ती पर्याय ही होती हैं। जैसे शुद्ध जीव द्रव्यमें सिद्ध पर्याय क्रमवर्ती रूपसे अनन्त कालतक परिणमन होता है इसलिये शुद्ध द्रव्यमें क्रमवर्ती पर्याय ही होती हैं।

१६ प्र०—पर्यायका स्वभाव क्या है ?

उ०—पर्यायका लक्षण या स्वभाव उत्पादव्यय ही मुख्य रूपसे होता है।

१७ प्र०—पर्याय ध्रौव्यरूप नहीं है ?

उ०—पर्यायके ध्रौव्यरूप भी है क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्यके साथही होते हैं तीनों एक समयमें पर्यायके होते हैं।

१८ प्र०—उत्पाद व्यय ध्रौव्य का भिन्न समय होता है या नहीं ?

उ०—उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों ही एक समय में होते हैं भिन्न समयमें नहीं जिस समयमें उत्पाद उसी समयमें व्यय तथा उसी समयमें ध्रौव्य भी है पर्याय भी त्रितयात्मक है। गुण और द्रव्यमें मुख्यता से नित्यताका और अनित्यताका गौण रूपसे कथन होता है। तथा पर्यायमें मुख्यतासे अनित्यता तथा गौणरूपसे नित्यता कथन करते हैं इस तरह मुख्यता और गौणतासे कथन है इसलिए पर्याय भी नित्यानित्य है केवल नित्य नहीं है तथा केवल अनित्य भी नहीं है स्याद्वादी मुख्य और गौणकी

प्रवृत्तिको नहीं छोड़ता।

१६ प्र०—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य पर्यायमें होते हैं या गुणमें या द्रव्यमें होते हैं ?

उ० उत्पाद व्यय और ध्रौव्य पर्यायमें होते हैं।

२० प्र०—पर्याय उत्पन्न-ध्वंसी है न ?

उ०—पर्याय उत्पाद-ध्वंसी है ऐसा जो कहते हैं ? वह एक नयकी मुख्यतासे कहते हैं। वह कथन वर्तमान ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे करते हैं। भूत भावी ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे नहीं करते हैं क्योंकि भूत भावीनयका विषय ध्रौव्यके बिना सिद्ध नहीं होसकता इसलिये त्रिकालकी प्रवृत्ति पर्यायमें होती है। इसलिये पर्यायको सर्वथा उत्पन्न-ध्वंसी नहीं कह सकते।

२१ प्र०—पर्याय सत्स्वरूप है या असत्स्वरूप ?

उ०—पर्याय सत्स्वरूप है, असत्स्वरूप नहीं है।

२२ प्र०—सत् नित्य है फिर पर्याय भी नित्य है ?

उ०—पर्याय नित्य भी है देखो "तद्भावाव्ययं नित्यं" तत्स्वरूप भाव (पर्याय) अव्यय नित्य है

२३ प्र०— तत्स्वरूप पर्याय कैसी ?

उ०—शुद्धपर्यायको ही तत्स्वरूपपर्याय कहते हैं।

२४ प्र०—अतत्स्वरूप पर्याय भी है क्या ?

उ०—विभाव अवस्थामें अतत्स्वरूप पर्याय होती है।

२५ प्र०—विभाव पर्याय कैसे होती हैं ?

उ०—दो पदार्थोंके परस्पर निमित्त नैमित्तिक संबंधसे विभाव होता है।

२६ प्र०—पर्यायमें कार्य-कारण संबंध होता है या नहीं ?

उ०— पर्यायमें कार्य-कारण संबंध है पर्यायमें कारणपर्याय और कार्यपर्याय ऐसे भेद होते हैं।

२७–कार्यकारण एक समयमें है या भिन्न समयमें ?

उ०—स्थूलदृष्टिसे भिन्न समयमें घटित करते हैं। पूर्व-समयर्तीपर्याय कारण-पयाय मानी जाती है और उत्तर-समयवर्तीपर्यायको कार्यपयाय कहा जाता है। तथा सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तो एक समयमें ही कारण कार्य आदि घटित होते हैं इसमें कोई बाधा नहीं।

२८ प्र०—पर्याय विकारी है या निर्विकारी ?

उ०—पर्यायमें दो भेद हैं एक स्वभावपर्याय और दूसरी विभावपर्याय। विभावपर्याय विकारी कही जाती है, तो भी सत्‌स्वरूपीपर्याय विकारी नहीं है। जो असत्‌स्वरूपी होती है वह विकारी होती है। निश्चयसे देखा जाय तो विकार पर्यायका स्वभाव नहीं, विभाव है। इसलिये ही विकारपर्यायका स्वरूप नहीं, विकार असत्‌स्वरूपी है और पर्याय सत्‌स्वरूपी है इसलिये विकार और पर्याय दोनों भिन्न-स्वरूपी हैं, अभिन्नस्वरूप नहीं है।

२९ प्र०—पर्याय विकारी क्यों नहीं है?

उ०—पर्याय सत्‌स्वरूप है, पर्याय असत्‌स्वरूप नहीं है।

३० प्र०—पर्यायको सत्‌स्वरूप कैसे कहते हो?

उ०—पर्यायमें उपादान कारण मौजूद है। जिसमें उपादान कारण मौजूद रहता है, वह सत्‌स्वरूपी होता है और जिसमें सत्‌स्वरूप नहीं, उसमें उपादान कारण नहीं रहता है। इसलिये पर्याय विकारी नहीं है।

३१ प्र०—विकारका उत्पादक कौन है?

उ०—विकार कोई वस्तु नहीं, कोई गुण नहीं,

कोई पर्याय भी नहीं। पर्याय और पर्यायी अथवा गुण-गुणी-जैसा विकार और विकारी स्वतंत्र कोई भी स्वरूप-स्वरूपवान सम्बन्ध नहीं या आश्रय आश्रयी-भाव नहीं। आश्रय और आश्रयी-भाव तत्स्वरूप होता है, अतत्स्वरूपसे जो कथन है वह ठीक नहीं है विकारका कोई उपादान कारण नहीं है विकारका उत्पादक भी कोई नहीं है। उत्पादकपना सत्पदार्थमें ध्रौव्यपनामें जो परिणमन होता है उसमें ही उत्पादकपना उत्पाद्य और उत्पत्तिकी व्यवस्था बैठती है और असत्स्वरूपमें ध्रौव्य नहीं है, ध्रौव्यके अभावमें उत्पत्ति और व्ययकी ठीक व्यवस्था नहीं बैठती है इसलिये विकारका उत्पादक कोई भी नहीं है।

३२ प्र०—विकार कैसे होता है?

उ०—विकार दो पदार्थोंके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे दीखता है वह भी इंद्रियगम्य ही है। वास्तविक भिन्न दो वस्तुके या शक्तिके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे वैसा दीखता है। एक पदार्थकी प्रभा दूसरे पदार्थपर पड़ती है तब वैसा दीखता है। जैसे

मृगजल तथा इंद्रधनुष आदि ये निमित्त नैमित्तिकपना ही है जैसे बालू और सूर्यकिरणके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे मृगजलकी उत्पत्ति व्यवहारमें मानी जाती है। तथा पानीके छोटे-छोटे कण और सूर्यकी किरणोंके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे इंद्रधनुष पंचरंगी दीखता है लेकिन पंचरंगी धनुष वहांपर मौजूद नहीं है। वह धनुष न सूर्यका है, न पानीके कणोंका है, दोनोंका ही नहीं है। तैसे ही जीव और अजीवके निमित्त नैमित्तिकसे जो विकार दीखता है वह सत्‌स्वरूप न होकर असत्‌स्वरूपी आभास मात्र है। उसे अध्यात्ममें उपाधि कहते हैं। वास्तविक देखा जाय तथा उसकी मीमांसा की जाय तो विकार मूलमें कोई द्रव्य गुण या पर्याय ठहरता ही नहीं, इसलिये विकार पर्याय रूप भी नहीं है।

३३ प्र०—विकारको पर्याय क्यों नहीं कहते हैं?

उ०—पर्याय गुण या द्रव्यको छोड़कर नहीं रहती है या पर्यायरहित द्रव्य या गुण भी नहीं ठहरते। कुंदकुंदाचार्यने कहा है कि "पज्जयविजुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।" पर्याय रहित द्रव्य

या गुण नहीं हैं। द्रव्य या गुण पर्यायसे रहित नहीं होते। इसलिये विकार पदार्थ नहीं है।

३४ प्र०—क्या जीव अजीवका अभाव होता है?

उ०—नहीं, जीव अजीवका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध अनादिकालसे अनन्तकाल तक रहता है। इन दोनोंका यथार्थ स्वरूप समझनेसे विकारका अभाव होता है विकारकी कल्पना नष्ट होती है।

३५ प्र०—वास्तविक विकार क्या है?

उ०—वह एक अजीवकी उपाधि है उसे जीवने अपना समझकर ही अपने स्वभावका या स्वरूपका उलटा ज्ञान कर लिया है। उस उलटे उपयोग होनेसे अज्ञान होता है तथा चारित्रकी उलटी अवस्था होती है। और यथार्थ मान्यता नहीं होनेसे उस उपाधिको अपना भाव (स्वभाव) समझता है। उसपर ममता करके विपरीत ज्ञानतथा विपरीत चारित्र कर लेता है। यही उसकी भूल हो रही है जिस तरह स्फटिकमणि स्वच्छ निमल सफेद होते हुए लालरंगका फूल उसके निकट रखदेनेपर वह स्फटिकमणि लाल दीखती है। तो भी क्या वह स्फटिकमणि लाल होगयी? या

क्या उसने अपना स्वच्छ सफेद रंग छोड़ दिया है? नहीं, लेकिन लाल दीखती है, वह स्फटिक जैसीकी तैसी ही है। उसी तरह जीवमें अजीवकी उपाधि होनेसे वह विकारी दीखता है तो भी स्वरूपका त्याग नहीं करता है तथा स्वरूपमें विकार नहीं है। इन दोनोंका भेद-ज्ञान होना यही विज्ञान है उससे ही जीवका कल्याण होता है।

३६ प्र०—उस उपाधिका कभी नाश नहीं होता ?

उ०—उपाधिका नाश नहीं होता है, वह अनादि अनन्त है।

३७ प्र०—वह उपाधि सत् है या असत् ?

उ०—वह उपाधि अपने अजीव स्वरूपकी अपेक्षा से सत् है लेकिन जीवकी अपेक्षासे असत् है क्योंकि इस जीवका उससे (उपाधिसे) कोई स्वरूप या तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, इसलिये वह पर है। वह जीवको बिगाड़ नहीं सकती तथा सुधार नहीं सकती जीव उसे भिन्न मानकर अपने स्वरूपमें स्थिर होवे तब वह उपाधि न दोष-दायक है, न गुण-दायक है इसलिये वह अपनेमें कारक नहीं है वह विकार

अपनेमें असत् है वह उपाधि जीवकी अपेक्षासे अपना स्वद्रव्य नहीं, स्वक्षेत्र नहीं, स्वकाल नहीं, स्वभाव नहीं उसी तरह अपना द्रव्यगुण पर्याय कुछ भी नहीं है। अजीव रूप है इसलिये उस अजीवका द्रव्यगुण पर्याय जीवसे भिन्न है। इसलिये निश्चय नयकी प्रधानतासे वह विकार जीवमें नहीं, जीव-द्रव्यगुण पर्याय रूपमें नहीं है। व्यवहारकी अपेक्षासे जीव-द्रव्यमें है, जीव गुणमें है, जीव पर्यायमें है ऐसा कहा जाता है।

३८ प्र०—इसका सम्बन्ध अपनेमें है या नहीं ?

उ०—उसका संयोग सम्बन्ध भी मान सकते हैं निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध भी मान सकते हैं। तथा सहयोग सम्बन्ध भी मान सकते हैं तथा अन्य बहुत से सम्बन्ध हैं वह गुरुके मुखसे जान सकते हैं। इस विषयका ज्ञान गुरुके विना नहीं हो सकता उसका जानकार सुगुरु ही शिष्योंको समझा सकता है ऐसा यह अगम्य विषय है। इसको जाननेपर संसारका बेड़ा पार होता है।

३९ प्र०—क्या इस विषयको लिखकर नहीं समझा सकते ?

उ०—इस विषयको लिखकर भी समझा सकते हैं। जिस तरह कि मैंने कुछ ऊपर समझाया है जो स्याद्वाद स्वरूपको अच्छी तरहसे जानता है वह उसका कथन मेरे उपरोक्त विषयमें लिखा हुआ जान सकता है और जो स्यद्वाद का स्वरूपही नहीं जानता उसे गुरुही अच्छी तरहसे समझा सकता है। इसलिये शिष्यकी परीक्षा करनी चाहिये तब ही गुरु को स्पष्टरूपसे कहना चाहिये अयोग्य शिष्यको नहीं समझाना चाहिये।

४० प्र० गुरुभी किसीको कहना और किसीको न कहना ऐसा असमान भाव रखता है? (रागद्वेष रखता है)

उ०—गुरु राग या द्वेषसे नहीं करते शिष्योंमें समझनेकी योग्यता नहीं हो तो वे क्या करेंगे उस शिक्षणसे उलटा उस शिष्यका मार्ग ही बिगड़ता है। इसलिये जितना समझ सकता है उतना ही समझाना योग्य है इसलिये गुरु शिष्योंके ऊपर न राग करता है और न द्वेष करता है वह तो रागद्वेष-रहित है।

४१ प्र०—फिर मंदबुद्धि वालोंका कल्याण कैसे हो?

उ०—मंदबुद्धिवाला गुरुके पास अभ्यास

करते २ जब अच्छी योग्यताको प्राप्त करता है तब वह गुरुका शिक्षापात्र होता है। तबही गुरु उसे समझाते हैं क्योंकि यह विषय निश्चय नयकी प्रधानता रखने वाला है। यह हर एकको इंद्रियगम्य नहीं होने से समझानेका विषय नहीं है। यह अतींद्रिय विषय है जो इंद्रियोंका अवलंबन छोड़ कर अतींद्रिय होने की शिक्षादेता है उसे यह समझा सकते हैं इंद्रियावलंबी को नहीं समझा सकते। इंद्रियावलंबी को समझानेका प्रयत्न गुरु करें तो भी वह शिष्य नहीं समझ सकता इसलिये पात्र अपात्र देखकर यह विषय समझा सकते हैं।

४२ प्र०—क्या बिना गुरुके यह विषय नहीं समझ सकता?

उ०—जो बुद्धिमान है स्वयं-बुद्ध है उसे अपने आप भी यह विद्या आती है यह विद्या वास्तवमें देखा जाय तो अपने ही गम्य है दूसरोंसे (देव गुरु शास्त्रसे) गम्य नहीं है मंद-बुद्धि वाला हो या तीव्र बुद्धि वाला हो स्वयं ही जानने की क्रिया कर सकता है। यद्यपि गुरु उस अध्यात्म अगम्य विद्याको कहे तो भी समझनेकी क्रिया कौन करे, गुरु या शिष्य?

शिष्य ही समझनेकी क्रिया करेगा। इसलिये जिसकी योग्यता हो वह ही यह विषय समझता है।

४३ प्र०—क्या अध्यात्म-विषय सबको नहीं कहना चाहिये ?

उ०—सबको कहते हैं लेकिन जिसकी तीव्र बुद्धि है उसे मेरे उपरोक्त लिखनेसे काफी ज्ञान हो सकता है किन्तु जिसकी योग्यता नहीं वह समझ नहीं सकता। वह गुरुके शरण जाकर ज्ञान प्राप्त करे।

जीवाधिकार

१ प्र०—जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके चेतना (ज्ञान दर्शनादि) है उसे जीव कहते हैं ।

२ प्र०—जीव गुण है द्रव्य है या पर्याय है ?

उ०—जीव द्रव्य भी है गुण भी है और पर्याय भी है।

३ प्र०—जीव द्रव्य कैसे है ?

उ०—छह द्रव्योंमें जीव द्रव्य भी है। हर एक द्रव्यमें अनंत गुण होते हैं तथापि मुख्य गुणकी अपेक्षासे उस द्रव्यका नाम पड़ता है। जीव द्रव्यमें जीवत्व गुण मुख्य है।

४ प्र०—जीव गुण किस अपेक्षा से है?

उ०—जीव द्रव्यमें अनेक गुण हैं। उनमें जीवत्व नामका पारिणामिक गुण (धर्म) है। वह गुण हमेशा रहता है।

५ प्र०—जीवत्व पर्याय किस अपेक्षासे कहा गुण जाता है?

उ०—जीवत्व गुणकी दो पर्यायें होती हैं जीवन रूप पर्याय (क्रिया) दूसरा मरण रूप पर्याय।

६ प्र०—ये दोनों जीवन रूप पर्यायें विभाव रूप हैं या स्वभाव रूप हैं।

उ०—जीवनरूप पर्याय और मरणरूप पर्याय ये दोनों विभाव रूप पर्यायें संसारावस्थामें होती हैं

७ प्र०—जीव पर्यायका लक्षण क्या है?

उ०—जो बहिरंग दश प्राणोंसे जीता है उसे जीवन रूप पर्याय (विभाव पर्याय) कहते हैं।

८ प्र०—मरणरूप पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो बहिरंग दश प्राणों के अभावसे मरण रूप विभाव पर्याय होती है उसे मरण रूप पर्याय कहते हैं !

९ प्र०—सिद्धोंमें कौनसा पर्याय है ?

उ०—सिद्धोंमें चेतनारूप स्वभाव जीवन पर्याय है वह भावप्राण (अंन्तरंग) है।

१०प्र०—सिद्धोंमें उस जीवरूप स्वभाव पर्याय का परिणमन है या नहीं ?

उ०—सिद्धोंमें जीव रूप (चेतना रूप) स्वभाव पर्याय का परिणमन हर समय होता है।

११ प्र०—जीवपर्याय के भेद कितने हैं ?

उ०—संसारी और मुक्त जीव ऐसे दो भेद हैं।

१२ प्र०—संसारी जीवके कितने भेद हैं।

उ०—त्रस जीव और स्थावर जीव ऐसे दो भेद हैं।

१३ प्र०—त्रसजीव किसे कहते हैं ?

उ०—जिसको त्रस नाम कर्मका उदय है उसे त्रसजीव कहते हैं।

१४ प्र०—त्रस जीवके कितने भेद हैं ?

उ०—द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, असंज्ञीपंचेंद्रिय संज्ञी पंचेंद्रिय ऐसे पांच भेद हैं।

१५ प्र—स्थावर जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके स्थावर नाम कर्मका उदय है उसे स्थावर जीव कहते हैं।

१६ प्र०—स्थावर जीवके कितने भेद हैं ?

उ०—पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति-काय ऐसे पांच भेद होते हैं।

१७ प्र०—जीव अध्यवसान भी है वह कैसे ?

उ०—जब जीव पर्याय कर्मोदयसे युक्त होकर विभावपर्याय रूप परिणमन करता है तब उसे अध्यवसान भी कहते हैं।

१८ प्र—अध्यवसान किसे कहते है ?

उ०—आशयरूप विभाव परिणामको अध्यव-सान कहते हैं।

२० प्र०—क्या स्वभाव अध्यवसान भी है ?

उ०—अध्यवसानका अर्थ है परिणाम, वह यदि रागद्वेषसे युक्त हो तो उसे विभाव अध्यव-सान कहते हैं, राग द्वेष रहित स्वभावाध्यवसान है

२१ प्र०—राग द्वेष कैसे होते हैं ?

उ०—जीव अजीवके निमित्त नैमित्तिक उपाधि भावसे राग द्वेष होते हैं।

२२ प्र०—राग द्वेष जीवके हैं या अजीवके ?

उ०—दोनोंके निमित्त नैमित्तिकसे हैं। न केवल जीवके हैं और न केवल अजीवके।

२३ प्र०—जीव रागद्वेषका कर्ता है या अजीव ?

उ०—रागद्वेषका कर्ता न केवल जीव है, न केवल अजीव है। दोनोंके निमित्त नैमित्तिकसे उत्पत्ति है।

२४ प्र०—रागद्वेषका उपादान कौन है और निमित्त कौन है ?

उ०—रागद्वेष यह खास जीवका या अजीवका गुण नहीं है। इसलिये इसमें उपादान कारण या कार्य घटित नहीं होता है। जो गुण है वह उपादान कहा जाता है। यह रागद्वेष गुण न होकर एक उपाधि भावाश्रित भाव है इसकी प्रतिष्ठा नहीं है।

२५ प्र०—यह उपाधि शाश्वत है या नाशवंत है ?

उ०—यह उपाधि न शाश्वत है न नाशवन्त है क्योंकि, जीव और अजीवके निमित्त नैमित्तक कारण

रूप है। इसका अभाव नहीं होता इसलिये यह उपाधि नाशवन्त नहीं है। वह है नहीं इसलिये वह शाश्वत भी नहीं है।

२६ प्र०—क्या इस उपाधि-भावसे यह रागद्वेष होते रहेंगे?

उ०—इस उपाधि और रागद्वेषका कोई गुण-गुणी संबंध नहीं है या तादात्म्यभी संबंध नहीं हं, कार्य कारणभाव संबंध नहीं है। तथा पर्याय पर्याया पनाका संबंधभी नहीं है तथा कोई सहायक संबंध भी नहीं है। इसलिये उपाधिसे रागद्वेष होते रहें ऐसा कहना ठीक सत्यार्थ नहीं है कि इस उपाधिसे यह जोव रागद्वेषरूप परणति करता है। यदि जीव रागद्वेष-रूप परिणमन नहीं करे तो रागद्वेष नहीं होते हैं। इसलिये उपाधिके रहते हुयेभी रागद्वेषरूप परिणमन नहीं होता है।

२७ प्र०—इस उपाधि भावकी अर्थ-क्रिया होती है या नहीं?

उ०—उपाधि न कोई द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है, इस उपाधिका न कोई उपादान कारण है।

हां अज्ञानी जीव इस उपाधिके निमित्तसे रागीद्वेषी बनता है। जैसे मृगजलको देखकर मृग पानी पीनेकी इच्छासे दौड़ता जाता है लेकिन उस मृगजलसे कोई भी प्यास बुझनेकी अर्थक्रिया नहीं होती। उसी तरह उपाधिसे कोई विकार या निर्विकार अर्थ क्रिया नहीं होती।

२८ प्र०—उपाधि सत् है या असत् ?

उ०—उपाधि सत् नहीं है। असत् है।

२९ प्र०—क्या इस उपाधिसे जीव विकारी बनता है ?

उ०—यह उपाधि जीवको विकारी बनानेको समर्थ नहीं है। इस उपाधिमें कारकपना नहीं है। इस उपाधिमें न कारणकार्यपना है, न परिणमन या परिणामक या परिणति है यानी कोईभी कारक नहीं है। इसलिये यह जीवको विकारी बनानेमें समर्थ नहीं।

३० प्र०—फिर जीव विकारी कैसे होता है ?

उ०—जीव उस असत्स्वरूपी उपाधिको अपने स्वरूपका संकल्प करके स्वयंही उलटीपरिणति कर लेता है। अपने परिणामको विकारी स्वयंही बनाता

है। उपाधि नहीं बनाती है।

३१ प्र०—क्या इस उपाधिका कोई नाश कर सकता है?

उ०—नहीं कर सकता, लेकिन वह नाशरूप ही है, असत् है। असत्का नाश कैसे हो सकता है? जीव उसका न तो नाश कर सकता है, न उत्पत्ति। जो वस्तुही नहीं उसका नाश या उत्पत्ति नहीं होता।

३२ प्र०—जीवका और उपाधिका कोई संबंध है या नहीं?

उ०—जीवका और उपाधिका कोईभी सम्बन्ध नहीं है।

३३ प्र०—जीव इस अध्यवसानको क्यों अपना मानता है?

उ०—जीव अनादि अविद्यासे अध्यवसानको अपना मानता है।

३४ प्र०—जीव रागद्वेष सहेतुक करता है या निर्हेतुक?

उ०—जीव रागद्वेष सहेतुक करता है। तथापि वह हेतु योग्य न होनेसे निश्चयसे वह अहेतुक ही

है। अपना अच्छा हो, बुरा नहीं इस हेतुसे ही राग-द्वेष करता है। लेकिन अनादि अनिधन आत्माका अच्छा और बुरा होना कैसे संभव है यह विचार नहीं। इसलिये अहेतुके समान है।

३५ प्र०—जीवमें रागद्वेषभाव प्रतिष्ठाको पाते हैं या नहीं ?

उ०—जीवमें रागद्वेषादि बंधनिमित्तक भाव प्रतिष्ठाको नहीं पाते।

३६ प्र०—रागद्वेष जीवके पर्याय हैं या गुण ?

उ०—रागद्वेष जीवके विकारी पर्याय हैं, गुण नहीं हैं।

३७ प्र०—जीवके रागद्वेषमें अर्थपर्याय है या द्रव्य-पर्याय ?

उ०—रागद्वेष जीवके विभाव-अर्थ-पर्याय है द्रव्यपर्याय नहीं है।

३८ प्र०—जीवके विभाव द्रव्यपर्याय कौनसी है ?

उ०—जीवके नर नारक देव तिर्यंचमें विभाव द्रव्य पर्याय या विभाव व्यंजनपर्याय है।

३९ प्र०—रागद्वेष किस गुणके विकारी पर्यायें हैं ?

उ०—रागद्वेष जीवके समता गुणके विकारी पर्याय हैं।

४० प्र०—समता गुणके निर्विकारीपर्याय कौनसे हैं?

उ०—उत्तम क्षमा मार्दवादि समता गुणके निर्विकारी पर्यायें हैं। "धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो। मोहक्षोभविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो।"

४१ प्र०—इन क्षमादिकोंको धर्म (गुण) कहा है या नहीं ?

उ०—पर्यायमें गुणका आरोप करके गुण कहा है। क्षमाको गुण मानने पर क्षमाके निर्विकारी पर्याय कौन होंगे ?

४२ प्र०—जीवके धर्म कौनसे हैं ?

उ०—समता,चेतनता,ज्ञायकता वेदकता,सुखिता आदि सब जीवके धर्म हैं।

४३ प्र०—जीव गुणकी पर्याय कौनसी है ?

उ०—चेतना-प्राणसे जीवन (अखंडजीवन) चलना यही स्वभाव पर्याय है। और संसारमें बाह्य और अंतरंग प्राणोंसे जीवन और प्राणोंके अभावसे मरण यह विकारी विभाव पर्याय है।

४४ प्र०—जीवत्वगुण है या नहीं ?

उ०—जीवत्व गुण है इसीलिये शाश्वत भी है। जीवपनाका अभाव कभी भी नहीं होता है वह त्रिकालनित्य है।

४५ प्र०—जीवत्वगुण मुख्य है या नहीं ?

उ०—जीवत्वगुण मुख्य गुण है इसलिये जीवको द्रव्यभी कहते हैं। जीवत्वगुण जीवद्रव्यके साधारण और विशेष गुणोंमें व्याप्त होकर रहता है। इसलिये जीवत्वगुण मुख्य है।

४५ प्र०—जीव द्रव्य भी है, गुण भी है, पर्याय भी है ये तीनों कथन किस तरह घटित होते हैं ?

उ०—इन तीनोंकी कथनशैली भिन्न २ है। तीनों की अपेक्षा भिन्न २ है।

४६ प्र०—ये तीनों भिन्न हैं या अभिन्न ?

उ०—ये तीनों ही प्रदेशत्वकी अपेक्षासे भिन्न नहीं किन्तु संज्ञा लक्षण प्रयोजनकी अपेक्षासे तीनों को भिन्न कहा जाता है। वास्तवमें ये तीन होते हुये एकत्व नहीं छोड़ते, ये तीनों ही सत्स्वरूपी हैं। ये तीनों असत्स्वरूपी नहीं हैं। इस तरह श्रीजिनेश्वर ने कहा है।

४७ प्र०—जीवके अधिकार कितने हैं ?

उ०—जीवके नौ अधिकार हैं। जीव, उपयोग-मय, अमूर्ति, कर्ता, भोक्ता, स्वदेहपरिमाण, संसारी, सिद्ध, विश्रसोर्द्धगति, ये नौ अधिकार हैं।

४८ प्र०—जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जो व्यवहारसे पांच इन्द्रियां, ३ तीन बल आयु और श्वासोच्छ्वास इस प्रकार भेदनय की अपेक्षासे दस प्राण और अभेद नय की अपेक्षासे ४ प्राण-१ इन्द्रिय २ बल ३ आयु ४ श्वासोच्छ्वास इस प्रकार ४ प्राणों से जो जीता है उसे जीव कहते हैं और निश्चयसे जिसके चेतना प्राण है उसे जीव कहते हैं।

४९ प्र०—उपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—"आत्मनश्चैतन्यानुविधायी परिणामः उपयोगः" अर्थात् आत्माका चैतन्यके अनुसार होने वाला जो परिणाम है उसे उपयोग कहते हैं।

५० प्र०—उपयोगके कितने भेद हैं ?

उ०—मुख्य दो भेद हैं ? १ दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग।

५१ प्र०—दर्शनोपयोगके भेद कितने हैं ?

उ०—चारभेद हैं—१ चक्षुदर्शन २ अचक्षुदर्शन ३ अवधिदर्शन और ४ केवलदर्शन इस प्रकार चार भेद हैं।

५२ प्र०—ज्ञानोपयोगके कितने भेद हैं ?

उ०—आठ भेद हैं कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, सुमति, सुश्रुत,सुअवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान ऐसे ज्ञानोपयोगके आठ भेद हैं।

५३ प्र०—अमूर्तिक किसे कहते हैं ?

उ०—जो पांचवर्ण, पांचरस, दोगंध और आठ स्पर्शोंसे रहित है उसे अमूर्तिक कहते हैं।

५४ प्र०—भोक्ता किसे कहते हैं ?

उ०—जो व्यवहारसे पुद्गलादिकोंका भोक्ता है। अशुद्ध निश्चयनयसे शुभाशुभ कर्मफलको भोगता है। शुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध भावके निराकुल धारावाही सुखका भोक्ता है।

५५ प्र०—कर्ता किसका है ?

उ०—व्यवहारनयसे पुद्गल कर्मोंका कर्ता है। अशुद्ध निश्चयनय से रागादिक चेतन भावोंका

कर्ता है और शुद्ध निश्चयनयसे शुद्धभावोंका कर्ता है।

५६ प्र०—स्वदेह-परिमाण किसे कहते हैं ?

उ०—नामकर्मके उदयसे जो इन संसारी जोवों को देह मिलता है उतना प्रमाण ही (आत्मा) जीव है, न ज्यादा है, न कम है। यह कथन विना समुद्घातके है।

५७ प्र०—समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—मूल शरीरको न छोड़कर आत्माके कुछ प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना उसे समुद्घात कहते हैं।

५८ प्र०—समुद्घात कितने हैं ?

उ०—सात समुद्घात हैं। १ वेदनासमुद्घात २ कषाय स० ३ तैजस स० ४ मारणांतिक स० ५ वैक्रियिक स० ६ आहारक स० ७ केवल स० ऐसे सात भेद हैं।

५९ प्र०—वेदना समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—जो तीव्र वेदना (पीड़ा) के अनुभवसे मूल शरीर का त्याग न करके आत्माके प्रदेशोंका

शरीरसे बाहिर जाना उसे वेदना कहते हैं।

६० प्र०—कषाय समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—तीव्र क्रोधादि कषायों के उदयसे आत्मा के प्रदेश मूल शरीरको न छोड़कर दूसरेको मारने के लिये बाहर जाते हैं। उसे कषाय समुद्घात कहते हैं।

६१ प्र०—मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—मरणांतसमयमें मूल शरीरको न छोड़कर जहां कहीं इस आत्माने आयु बांधा है उसके स्पर्शने को जो प्रदेशोंका शरीरसे बाह्य गमन करना उसे मारणांतिक समुद्घात कहते हैं।

६२ प्र०—तैजस समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—अपने मनको अनिष्ट (बुरा) उत्पन्न करने वाले किसी कारणको देखकर उत्पन्न हुआ है क्रोध जिसके ऐसा जो संयम का निधान महामुनि उसके बांयें कंधेसे सिंदूरके ढेरकी सी कांतिवाला, बारह योजन लंबा, सूच्यंगुलके संख्येय भाग प्रमाण मूल विस्तार और नौ योजनके अग्रविस्तारको धारण करने वाला काहल (बिलाव) के आकारका धारक

पिंड निकल करके वामप्रदक्षिणा देकर मुनिके हृदयमें स्थित जो विरुद्ध पदार्थ है उसको भस्म करके और उस मुनिके साथ आपभी भस्म होजाय उसे अशुभ तैजस समुद्घात कहते हैं। तथा जगको रोग अथवा दुर्भिक्ष आदिसे पीडित देखकर उत्पन्न हुयी है कृपा जिसके ऐसा जो परम संयमनिधान महाऋषि उसके मूल शरीरको नहीं छोड़कर पूर्वोक्त देहके प्रमाणको धारण करनेवाला अच्छी सौम्य आकृतिका धारक पिण्ड दक्षिण स्कंधसे निकलकर दक्षिणप्रदक्षिणा कर रोग दुर्भिक्ष आदिको दूरकर फिर अपने स्थानमें प्रवेश कर जाय यह शुभ रूप तैजस समुद्घात है।

६४ प्र०—आहारक समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—पद और पदार्थके विषयमें उत्पन्न हुई है शंका जिसके ऐसा जो परमऋद्धि का धारक महर्षि के मस्तक में से मूल शरीर को न छोड़कर निर्मल स्फटिक की कान्ति तथा रंगका धारण करनेवाला एक हाथका पुरुषाकार निकल कर अंतमुहूर्त के बीचमें जहाँ कहीं भी केवली भगवान को देखता है

और उस केवली के दर्शन से पद और पदार्थ विषयक शंकाका समाधान हो जानेपर फिर अपने स्थान में प्रवेश करे सो आहारक समुद्घात है ।

६५ प्र०—केवली समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—केवलज्ञानी के ६ महीने आयु कम बाकी रह जावे तथा वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीनों कर्मों की स्थिति ज्यादा हो तो मूल शरीर को न छोड़ कर दंड कपाट प्रतर लोकपूर्ण इनके आकार समान आत्म-प्रदेश फैलाकर फिर प्रतर, कपाट, दंड के आकार होकर मूल शरीरमें आते हैं उसे केवली समुद्घात कहते हैं ।

६६ प्र०—संसारी अधिकार किसे कहते हैं ?

उ०—जीव ज्ञानावरणादि कर्मोदयसे एकेंद्रियादि से संज्ञी पंचेंद्रिय तक अवस्थाओंमें उत्पन्न होकर पंच परावर्तन रूप संसारमें भ्रमण करता है उसे संसार कहते हैं ।

६७ प्र०—पंच परावर्तन कौनसे हैं ?

उ०—द्रव्य, क्षेत्र; काल, भव और भाव, ये पांच परावर्तन हैं ।

६८ प्र०—सिद्धाधिकार किसे कहते हैं ?

उ०—संपूर्ण अष्ट कर्मों का नाशकर आठगुणों से युक्त चरम शरीरसे किंचित् कम ऐसे पुरुषाकार रूपमें लोकके शिखरपर रहता है उसे सिद्ध-आत्मा कहते है ।

६९ प्र०—विश्रसाऊर्द्धगति किसे कहते हैं ?

उ०—प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश इन चार प्रकारके कर्मों के बंधसे रहित होने पर यह निष्कर्म रूप आत्मा स्वभावसे ऊर्द्धगति करता है जैसे एरंडक, बीज, या अग्निकी शिखा, या तूंबीफल पानीमें ऊपर आजाता है वैसे जीवकी उर्द्धगति होती है ।

जीवाधिकार

१ प्र०—अजीव किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें चेतना नहीं है । उसे अजीव कहते हैं । जीवमें ही चेतना रहती है । अजीव में

चेतना (ज्ञान दर्शन) नहीं रहता है।

२ प्र०—अजीव द्रव्य है या नहीं ?

उ०—अजीव द्रव्य है। वह पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ऐसे तरह का है।

३ प्र०—अजीव गुण है या नहीं ?

उ०—अजीव गुणभी है। गुणके बिना द्रव्य की सिद्धि नही होती। गुणोंके पिंडको ही द्रव्य कहते हैं।

४ प्र०—अजीव पर्याय है या नहीं ?

उ०—अजीव पर्याय भी है। पर्याय के बिना गुणकी सिद्धि नहीं होती अर्थात् द्रव्य गुण पर्याय तीनोंका अविनाभावी संबंध है, एकके अभावमें तीनों का अभाव होता है। द्रव्य पर्याय रहित नहीं है तथा पर्याय गुणके बिना नहीं रहती। इन तीनों का अविनाभावी संबन्ध है।

५ प्र०—तीनों युगपत् रहते है या नहीं ?

उ०—तीनों युगपत् एक समयमें रहते हैं।

६ प्र०—इन द्रव्योंमें विकारी द्रव्य कौन से हैं और अविकारी द्रव्य कौन से हैं ?

उ०—पुद्गल द्रव्य विकारी हो सकता है इस-

लिये इस पुद्गल द्रव्य को विकारी और निर्विकारी ये दोनों अवस्थायें होती हैं। और बाकीके चार धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य ये चारों निर्विकारी या अविकारी हैं। इन चारों द्रव्योंकी विकार परिणति नहीं होती है। निर्विकार परिणति होती है।

७ प्र०—इन द्रव्यों को किसने उत्पन्न किया है?

उ०—इन द्रव्यों को उत्पन्न किसीने नहीं किया। ये छहों द्रव्य अनादि-अनिधन हैं। इस प्रकार श्रीजिनेश्वरने कहा है युक्तिसे भी सिद्ध है स्वानुभव तथा आगमसे सिद्ध है। इन द्रव्योंमेंसे पांच—जीव, पुद्गल ,धर्म, अधर्म आकाश द्रव्य अस्ति-काय स्वरूप हैं। काल अस्ति-स्वरूप है किन्तु काय-स्वरूप नहीं है।

८ प्र०—अस्ति किसे कहते हैं?

उ०—जिसका अस्तित्व अनादि स्वयं-सिद्ध है उसे अस्ति कहते हैं। इसका कर्ता कोई नहीं है।

९ प्र०—काय किसे कहते हैं?

उ०—बहु-प्रदेशी पिंड को काय कहते हैं।

१० प्र०—क्या काल द्रव्य काय नहीं है ?

उ०—काल द्रव्य में बहु-प्रदेशी-पना नहीं है इसलिये वह काय नहीं, काल द्रव्य एकप्रदेशी है।

११ प्र०—काल अस्तिस्वरूप हैं या नहीं ?

उ०—काल द्रव्य अस्ति स्वरूप है। उसे किसीने उत्पन्न नहीं किया वह भी अनादि स्वयंसिद्ध है।

१२ प्र०—जीवमें कितने प्रदेश है ?

उ०—जीवमें असंख्यात प्रदेश है।

१४ प्र०—पुद्गलमें कितने प्रदेश हैं ?

उ०—संख्यात, असंख्यात तथा अनंतप्रदेश भी हैं

१५ प्र०—पुद्गल द्रव्य एक परमाणुरूप भी है न ?

उ०—पुद्गल द्रव्य एक परमाणुरूप भी है वह एकप्रदेशी है तथापि अनेक परमाणु मिलकर पिंड होने की शक्ति है इसलिए वह कभी संख्यातप्रदेशी, कभी असंख्यात प्रदेशवाला और कभी अनंतप्रदेश वाला पिंड बनता है इस प्रकार तीनों प्रकार की सिद्धि होती है।

१६ प्र०—धर्म अधर्म और आकाश के कितने प्रदेश हैं ?

उ०—धर्म,अधर्म द्रव्यके असंख्यात और आकाश के अनंत प्रदेश हैं। काल एकप्रदेशी है इसलिए वे पांच कायवान हैं, काल अकाय है।

१७ प्र०—कालमें बहुप्रदेशी होने की शक्ति है या नहीं ?

उ०—नहीं, काल द्रव्य में बहुप्रदेशी होने की शक्ति नहीं है इसलिये वह काय रूप नहीं है।

दर्शनाधिकार

१ प्र०—दर्शन किसे कहते हैं ?

उ०—सामान्यविशेषात्मक बाह्य पदार्थ को अलग २ भेद रूप से ग्रहण नहीं करके जो सामान्य ग्रहण करता है अर्थात् स्वरूपमात्र अवभासन होता है उसे दर्शन कहते हैं। अर्थात् विषय विषयीके योग्यदेशमें होनेकी पूर्वावस्थाको दर्शन कहते हैं।

२ प्र०—बाह्यार्थका निश्चय करता है या नहीं ?

उ०—बाह्यार्थका निश्चय न करते हुये भी

स्वरूप का जो निश्चय करता है उसे दर्शन कहते हैं।

३ प्र०—जिसके द्वारा देखा जाय अवलोकन किया जाय उसे दर्शन क्यों नहीं कहते ?

उ०—इस प्रकारसे करनेसे चक्षुइंद्रिय और आलोकको भी दर्शन कहनेका प्रसंग आवेगा अर्थात् द्रव्य चक्षु और आलोक ये दोनों भी आत्मा के धर्म नहीं हैं। इसलिये यह उपरोक्त लक्षण ठीक नहीं बैठता।

४ प्र०—दर्शन का लक्षण 'दृश्यतेऽनेन इति दर्शनं' जिसके द्वारा देखा जाय उसे दर्शन कहते हैं ऐसा क्यों नहीं कहते ?

उ०—ऐसा कहने पर अंतर्मुख चित्प्रकाशको दर्शन और बहिर्मुख चित्प्रकाश को जो ज्ञान माना है सो इन दोनोंके एक होनेमें विरोध आता है। इसलिये ठीक नहीं है।

५ प्र०—क्या वह दर्शन ज्ञान से भिन्न है ?

उ—हां, वह दर्शन ज्ञान गुणसे भिन्न है। दर्शन आत्मा का एक स्वतंत्र गुण है वह ज्ञानरूप नहीं है। दर्शन गुण और ज्ञान गुण अलगर हैं।

६ प्र०—सामान्य प्रतिभास दर्शन और विशेष ज्ञान है ऐसा ही जैन साहित्यकारोंने माना है न ?

उ०—नहीं, ऐसा दर्शन ज्ञानका स्वरूप जैन सिद्धान्तकारोंने नहीं मान। सामान्य विशेष दोनों भिन्न नहीं हैं। यदि उन्हें भिन्न मानकर 'सामान्यको दर्शन और विशेषको ज्ञान विषय करता है' ऐसा माना जाय तो बहुत दोष आता है। सामान्यरहित विशेष अवस्तु ठहरता है। तथा विशेपरहित सामान्य अवस्तु ठहरता है। तथा ज्ञान सामान्य को नहीं जानने वाला होनेपर स्वरूपका ज्ञान नहीं होगा। इसलिये सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान ऐसा नहीं माना जाता। सामान्य विशेपात्मक आत्मस्वरूप का अवलोकन करना (देखना) दर्शन है और सामान्य विशेषात्मक आत्म स्वरूपको जानना ज्ञान है, इतना अंतर है।

७ प्र०—सामान्यग्रहणको दर्शन कहते हैं ऐसा सिद्धान्त में आगम-वाक्य है। देखो 'जं सामण्णं ग्रहणं, अर्थात सामान्यको जो ग्रहण करता है उसे दर्शन कहते हैं तब आप सामान्य विशेषात्मक

आत्म-ग्रहणको दर्शन कैसे कहते है ?

उ०—सामान्य विशेषात्मक आत्माका सामान्य शब्दके वाच्यरूपमें ग्रहण किया है।

प्र०—उसको सामान्यपना कैसे आता है ?

उ०—चक्षु इंद्रियावरणका क्षयोपशम रूपमेंही नियमित है इसलिये उससे रूपविशिष्ट ही पदार्थका ग्रहण पाया जाता है। वहांपरभी चक्षुदर्शकमें रूप-सामान्य है इसलिये उससे नीलादिकमें किसी एकके द्वारा ही विशिष्ट वस्तु की उपलब्धि नहीं होती है।

अत: चक्षुइंद्रियका क्षयोपशम रूपविशिष्ट अर्थके प्रति समान है और आत्माको छोड़कर क्षयोपशम पाया नहीं जाता है। इसलिये आत्मा भी क्षयोपशम की अपेक्षा समान है और उस समानके भावको सामान्य कहते हैं। वह दर्शनका विषय है।

(धवला टीकाधार से)

तथा दूसरी तरहका उत्तर भी है—

आत्मा बाह्य पदार्थोंमें साधारण रूपसे पाया-जाता है इसलिये उक्त वचन में सामान्य संज्ञाको प्राप्त आत्माका ही सामान्य पदसे ग्रहण किया गया है।

९ प्र०—दर्शन आत्माको छोड़कर बाह्यपदार्थके सामान्य विशेषको ग्रहण करता है या नहीं ?

उ०—आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य, गुण पर्यायका विषय दर्शन नही करता है।

१० प्र०—यह दर्शन पर द्रव्य को विषय क्यों नहीं करता ?

उ०—आत्माके जितने भी गुण हैं, उनमें एक ज्ञान गुणको छोड़कर बाकी सब गुण निर्विकल्प ही हैं। ज्ञान स्वकी अपेक्षासे निर्विकल्प है और बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षासे वह सविकल्प है अर्थात् हरएक पदार्थको भेद रूपसे जानता है। ज्ञानमें परवस्तुका आकार ग्रहण करनेकी शक्ति है। इसलिये वह सविकल्प है। अर्थात् पदार्थोंका अलग २ आकार ग्रहण करता है ?

११ प्र०—दर्शन गुणकी पर्याय कौनसी है ?

उ०—देखनरूप उपयोग क्रिया उस दर्शन गुण की पर्याय है। अथवा चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये भी पर्याय हैं।

१२ प्र०—दर्शन और ज्ञानका सम्बन्ध कौनसा है ?

उ०—जैसे दर्शनगुण है उसी तरह ज्ञानगुण है इन दोनोंका सद्भाव या समवेत संबंध है। समवाय संबंध भी माना जाता है।

१३ प्र०—दर्शन और ज्ञानमें अंतर क्या है ?

उ०—दर्शन गुणका विषय केवल स्व है और ज्ञानका विषय स्व तथा पर दोनों हैं।

१४ प्र०—चक्षुदर्शनका विषय वाह्य ही है न ?

उ०—चक्षुदर्शनका विषय यद्यपि निश्चयनयकी अपेक्षासे वाह्य है। यथापि व्यवहार नयकी मुख्यतासे यह विषय घटित होता है। जैसे चक्षुइंद्रिया वरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुये ज्ञानके विषय भावको प्राप्त जितने पदार्थ हैं उतनेही आत्मामें स्थित क्षयोपशम उन उन संज्ञाओंके नाम होते हैं। और उनके निमित्तसे आत्मा भी उतने प्रकारका हो जाता है। अत: इसप्रकारकी शक्तियोंसे युक्त आत्माके संवेदन करनेको चक्षुदर्शन कहते हैं उसी प्रकार अचक्षु दर्शनमें तथा अवधि दर्शनमें समझ लेना चाहिये।

१५ प्र०—चक्षुदर्शन किन २ जीवों को होता है ?

उ०—चतुरिंद्रिय जीव से आदि लेकर क्षीण-कषाय पर्यन्त जीवोंके होता है।

१६ प्र०—अचक्षुदर्शन किन किन जीवों को होता है ?

उ०—एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषायतक रहता है

१७ प्र०—अवधिदर्शन किन जीवोंको होता है ?

उ०—प्रथम गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय तक होता है।

१८ प्र०—केवलदर्शन किन २ जीवोंको होता है ?

उ०—सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धों को होता है।

ज्ञानाधिकार

१ प्र०—ज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—जाननेको ज्ञान कहते हैं। 'जानाति इति ज्ञानं।'

२ प्र०—ज्ञान गुण है या पर्याय ?

उ०—ज्ञान मुख्य गुण है। तथा उस गुणकी पर्याय भी है। ज्ञान ज्ञाता है, ज्ञान ज्ञेयभी है, ज्ञान ज्ञातृ क्रिया भी है इसलिये वह गुण पर्याय रूप है।

३ प्र०—ज्ञान किसको जानता है ?

उ०—स्व-पर वस्तुको जानता है। दर्पणवत्

४ प्र०—ज्ञान भिन्न २ समयोंमें स्व-पर पदार्थोंको जानता है या एक समयमें ?

उ०—एक समयमें ही स्वपर को जाननेका ज्ञान का स्वभाव है।

५ प्र०—ज्ञान अनादि कालसे स्वपरको जानता है ?

उ०—हां, अनादि कालसे स्वपरको जानता है।

६ प्र०—क्या ज्ञान अनादिकालसे स्वपरको एक समयमें जानता है ?

उ०—अनादिकालसे कर्म-संबंधित होनेसे स्व-परको एक समयमें नहीं जानता। क्षायोपशमिक ज्ञान स्वपरको एक समयमें नहीं जानता। क्रमसे जानता है। कभी स्वको तो कभी परको ऐसे जानता है।

७ प्र०—अनादि कालसे स्वपरको कैसे जानता है ?

उ०—अनादि कालसे स्वपरको जानता है। तथापि संशय विपर्यास अनध्यवसाय रूपसे जानता है। इसलिये मिथ्यादृष्टिको अज्ञानी कहा है।

८ प्र०—अज्ञानी क्यों कहा है ?

उ०—वस्तुस्वरूपका यथार्थ निश्चय कराने वाले धर्मको ज्ञान कहते हैं। इसलिये संशय विपर्यास अनध्यवसाय रूप से जानता है। इसलिये मिथ्या-दृष्टिको अज्ञानी कहा है।

उ०—वस्तुस्वरूपका यथार्थ निश्चय कराने वाले धर्मको ज्ञान कहते है। इसलिये संशय विपर्यास नध्यवसाय रूप अवस्थामें ज्ञानका (सम्यग्ज्ञानका) अभाव प्रतिपादित होता है, कारण कि, शुद्ध नय की विवक्षामें वस्तु-स्वरूपका उपलंभ कराने वाले धर्मको ज्ञान कहा है इसलिये मिथ्यादृष्टि जीवको अज्ञानी कहा है।

९ प्र०—संशय विपर्यय अनध्यवसाय क्या है ?

उ०—संशय विपर्ययादि मिथ्यात्व कर्मके उदय रूप दोष हैं।

१० प्र०—ज्ञान गुण त्रिकाली-नित्य है न ?

उ०—ज्ञानगुण त्रिकालनित्य होते हुयेभी विभाव रूप परिणमन करता है। गुणमेंभी विभावता आती है यदि उसे विभाव गुण नहीं मानोगे तो बहुत दोष आते हैं। गुणस्वरूप ही परिणमन होता है। गुण स्वरूपको छोड़कर परिणमन नहीं होता है। गुण निर्मल हो और उसका परिणमन मलीनहो ऐसा कभी नहीं होता है।

११ प्र०—गुणसे पर्याय भिन्न है या अभिन्न ?

उ०—गुणसे पर्याय सर्वथा भिन्न नहीं तथा सर्वथा अभिन्न भी नहीं, भिन्नाभिन्न-स्वरूपी है। इसलिये दोष नहीं आता।

१२ प्र०—ज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ०—ज्ञानके मति श्रुत अवधि कुमति कुश्रुत कुअवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान इस तरह आठ भेद हैं।

१३ प्र०—इन ज्ञानोंमें प्रत्यक्ष और परोक्ष कौनसे हैं?

उ०—मति श्रुत परोक्ष हैं। अवधि और मनः-पर्यय विकलप्रत्यक्ष है। और केवलज्ञान सकल

प्रत्यक्ष है। यह कथन शास्त्रीय अपेक्षासे है। अध्यात्मकी अपेक्षासे श्रुतज्ञानभी आत्मानुभव करालेने के कारण प्रत्यक्ष है तथा मतिज्ञानभी आत्मसन्मुख होनेसे उसे भी प्रत्यक्ष माना है।

(पंचाध्यायीमें देखो)

१४ प्र०—ज्ञान स्वतः प्रमाण है या परसे ?

उ०—ज्ञान स्वतः प्रमाण है। अनभ्यस्त विषयमें परसे प्रमाण है अध्यात्मकी अपेक्षासे ज्ञान स्वयं प्रमाण है क्योंकि अध्यात्म बोधमें दूसरा कोई सहायक नहीं है।

१५ प्र०—ज्ञान मूर्तिक है या अमूर्तिक ?

उ०—ज्ञान अमूर्तिकहै। मूर्तिक नहीं है। अध्यात्म विवेचनमें ज्ञानको मूर्तिक नहीं मानते हैं। अमूर्तिक ही मानते हैं और व्यवहार नयसे मूर्तिक कर्म पुद्गलकी संगति होनेसे उसे मूर्तिक कहते हैं।

१६ प्र०—ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है, या आत्मप्रमाण है ?

उ०—ज्ञान आत्म प्रमाण है यह कथन अध्यात्म अपेक्षासे है व्यवहारमें ज्ञेय प्रमाण भी मानते हैं।

१७ प्र०—ज्ञान सविकल्प है या निर्विकल्प ?

उ०—ज्ञान स्वत:की अपेक्षासे या शुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षासे निर्विकल्प है और व्यवहार नय से सविकल्प है।

१८ प्र०—ज्ञान साकार है या निराकार ?

उ०—स्वत:की अपेक्षासे ज्ञान निराकार है। और व्यवहारमें (शास्त्रीयापेक्षासे) ज्ञान साकार है।

१९ प्र०—भेदज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा और अनात्मा यानी शरीर नोकर्म भावकर्म, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इनका भेद समझना उसे भेदविज्ञान कहते हैं।

२० प्र०—अध्यात्म-अपेक्षासे भेद-विज्ञान किसे कहते है ?

उ०—ज्ञेय और ज्ञानका भेद जाननेको भेद विज्ञान कहते हैं। ज्ञेयकेभी स्वज्ञेय और परज्ञेय ये दो भेद हैं। स्वज्ञेय ज्ञानसे भिन्न नहीं है। और पर ज्ञेय तथा ज्ञानमें प्रदेश-भिन्नता है इसलिये भिन्न है। इन दोनोंका अन्तर जानना उसे अध्यात्मकी अपेक्षासे भेदज्ञान कहते हैं।

२१ प्र०—ज्ञान आत्मासे भिन्न है या अभिन्न ?

उ०—ज्ञान आत्मासे सर्वथा भिन्न नहीं है तथा सर्वथा अभिन्न भी नहीं है, भिन्नाभिन्न है अर्थात् प्रदेश से भिन्न नहीं होसकता। संज्ञा लक्षण प्रयोजनादिक की अपेक्षासे भिन्न माना जाता है। यह कथन कथंचित् रूपसे मानना चाहिये।

२२ प्र०—ज्ञानमें षट् कारक हैं या नहीं ?

उ०—ज्ञानमें षट्कारक हैं। वह भी एक समयमें होते हैं।

२३ प्र०—ज्ञानको अज्ञान कबतक कहा जाता है ?

उ०—जबतक विशेष रूपको नहीं जानता है। तब तक उसे अज्ञान कहते हैं।

२४ प्र०—ज्ञान विशेष रूप क्यों नहीं जानता ?

उ०—ज्ञानमें अज्ञान अजीव रूपका प्रतिबिंब पड़ता है। इस प्रतिबिम्बको अपना स्वरूप जबतक मानता है तब तक वह सामान्यको ही जानता है। जब उस प्रतिबिंबको अपना नहीं मानता तब उसे विशेषरूप ज्ञानका स्वरूप मालूम होता है। तब उसे विशेष ज्ञान कहते हैं। उसेही ज्ञान कहते हैं।

२५ प्र०—ज्ञानसे कर्म बंध होता है या नहीं ?

उ०—ज्ञानसे कर्म बंध नहीं होता है तथा संवर निर्जरा भी नहीं होती। कर्म-बंध राग द्वेषसे होता है तथा वीतरागतासे कर्म-बंध नहीं होता। संवरनिर्जरा होती है।

२६ प्र०—ज्ञानसे कर्म-बंध या निर्जरा क्यों नहीं होती है ?

उ०—ज्ञानमें ग्राहक शक्ति नहीं है और विमोचन शक्तिभी नहीं है। इसलिये ज्ञानसे बंध तथा निर्जरा नहीं होती है।

सम्यक्त्व-अधिकार

१ प्र०—सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्यकी प्रगटता जिसका लक्षण है उसको सम्यक्त्व कहते हैं। इसी तरह अनेक लक्षण हैं। कोई लक्षण शुद्ध

नय की अपेक्षासे किया है, कोई अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षासे किया है, कोई आत्मभूत लक्षण है कोई अनात्मभूत लक्षण है। अनेक आचार्योंने अनेक अपेक्षासे लक्षण किये हैं।

२ प्र०—सम्यक्त्व गुण है या पर्याय ?

उ०—सम्यक्त्व आत्माका एक मुख्य गुण है।

३ प्र०—सम्यक्त्व आत्माका गुण हैं तो त्रिकाल-वर्ती होना चाहिये क्यों कि गुण त्रिकालनित्य रहता है।

उ०—सम्यक्त्व यह आत्माका गुण है। वह त्रिकाल-नित्य है। तथा अनादि स्वयंसिद्धों के वह सम्यक्त्व गुण त्रिकाली-नित्य है। तथा उस सम्य-क्त्व गुणको सम्यक्त्व रूप पर्याय भी है।

४ प्र०—सम्यक्त्व आत्माका गुण न होकर वह पर्याय है न ? गुण हो तो मिथ्यात्व कैसे होता इसलिये वह पर्याय है ?

उ०—सम्यक्त्व आत्माका खास गुण है। सिद्धों में जो मुख्य आठ गुण माने हैं उनमें प्रथम सम्यक्त्व ही है। किन्तु मिथ्यात्व कर्मके उदय से

विभाव रूप परिणमन होनेसे उस समय वहाँ मिथ्यात्व होता है तोभी मिथ्यात्व आत्माका स्वभाव नहीं है। वह विभाव है और उसका नाश होता है।

५ प्र०—सम्यक्त्व श्रद्धान गुणकी पर्याय है न ?

उ०—नहीं, श्रद्धान तो सम्यक्त्वका लक्षण है देखो 'जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं' इस प्रकार से वह सम्यक्त्वका लक्षण होनेसे श्रद्धान ही सम्यक्त्वका पर्याय है।

६ प्र०—श्रद्धान यह लक्षण शुद्धनिश्चयनयसे है ?

उ०—नहीं, सम्यक्त्वका लक्षण श्रद्धान शुद्ध निश्चयनयसे नहीं है अशुद्ध निश्चयनयसे है।

७ प्र०—क्या श्रद्धान श्रद्धा गुणका पर्याय है ?

उ०—श्रद्धा गुण नहीं है श्रद्धा और श्रद्धान दोनोंमें पूर्वोत्तरवर्तीपना है परिगृहीतमें श्रद्धान होता है। श्रद्धा आत्माका कोई खास गुण नहीं। श्रद्धा सम्यक्त्वकी पर्याय मानी जाती है और कभी कभी ज्ञानका पर्याय भी मानी जाती है। क्योंकि सम्यक्त्व की पर्याय होनेसे ज्ञानको विशेषण लगाते हैं

जैसे सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान इत्यादि। इसलिये ज्ञान के पर्याय में आरोप करते हैं। वास्तवमें वह सम्यक्त्वकी पर्याय है। श्रद्धा रुचि और प्रतीति ये सम्यक्त्वकी पर्याय हैं।

८ प्र०—श्रद्धाका लक्षण क्या है?

उ०—तत्वके अभिमुख बुद्धिका होना श्रद्धा कहलाती है यह लक्षण है। परिगृहीत अर्थमें श्रद्धान होता है। श्रद्धाके अनंतर ही श्रद्धान होता है।

९ प्र०—तत्वके सन्मुख कौन होता है?

उ०—प्रथम तो ज्ञान ही सन्मुख होता है। फिर सम्यक्त्व गुणका व्यापार होना अर्थात् अर्थ-प्रापण समर्थ क्रियाका प्रयोग होना उसे सम्यक्त्वकी श्रद्धान रूप पर्याय कहते हैं। यह विभावावस्थामें मिथ्या रूप पर्याय होती है और स्वभावावस्थामें सम्यक्त्व रूप पर्याय होती है सम्यक्त्वके ही स्वभाव और विभाव परिणति होती हैं। मिथ्यात्व आत्मा का कोई स्वतन्त्र गुण नहीं, वह गुणका दोष है।

१० प्र०—पंचाध्यायी ग्रंथमें श्रद्धा रुचि प्रतीतिको

ज्ञानकी पर्यायरूप माना है इसलिये विरोध आता है कि नहीं ?

उ०—नहीं, विरोध नहीं आता, क्योंकि, पंचाध्यायीकारने ज्ञानके द्वारा समझाते समयमें तत्वार्थाभिमुख ज्ञानका होना श्रद्धा माना है। वह उपचारसे माना है। वास्तवमें सम्यक्त्वका परिणामरूप व्यापार तत्वार्थके सन्मुख होना श्रद्धान है देखो तत्वार्थराजवार्तिक में 'प्रणिधानविशेषाहितद्वैविध्यजनितव्यापारं तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।'

११ प्र०—रुचि किसे कहते हैं ?

उ०—'सात्म्यं रुचिः' तत्वार्थमें आत्मिक भावका होना रुचि कहलाता है।

१२ प्र०—तत्वरुचि को सम्यक्त्व कहने पर उसे अशुद्धतर लक्षण क्यों कहा है ?

उ०—तत्वपर्यायको कहते हैं केवल तत्व-पर्याय को मानना दोष है क्योंकि 'अर्थको छोड़कर भी तत्व होता है' ऐसी मान्यता हो जानेसे ठीक नहीं है इस कारणसे द्रव्यको गौण करके और पर्यायको मुख्य करके कहनेसे अशुद्धतर निश्चयनयका प्रयोग

होता है इसलिये केवल तत्वरुचि सम्यक्त्व का लक्षण अशुद्धतर कहा है।

१३ प्र०—प्रतीति किसे कहते हैं?

उ०—'प्रतीतिस्तु तथेति स्यात्' वह तत्वार्थ उसी प्रकार है ऐसा स्वीकार करना उसे प्रतीति कहते हैं।

१४ प्र०—श्रद्धा, रुचि, और प्रतीति तीनों किसके पर्याय हैं?

उ०—ये तीनों सम्यक्त्व गुणकी पर्याय हैं। ये संसारावस्थामें ही रहते हैं। सिद्धोंमें तीनों पर्याय नहीं रहतीं।

१५ प्र०—क्यों नहीं रहतीं?

उ०—जबतक उपयोगका संक्रमण है तबतक ही श्रद्धा रुचि प्रतीति ये पर्यायें होती हैं। संक्रमण रहित परिणामोंमें ये तीनों पर्याय नहीं होतीं।

१६ प्र०—जाने हुई पदार्थोंमें श्रद्धान होता है या नहीं?

उ०—जाने हुए पदार्थोंमें ही श्रद्धान होता है। अनजान वस्तुमें श्रद्धान नहीं होता है। श्रद्धा रुचि प्रतीति तीनों जाने हुये पदार्थ में होवे हैं।

१७ प्र०—इनका क्रम कैसा है ?

उ०—प्रथमतः दर्शन, उसके बाद ज्ञान, उसके बाद श्रद्धान होता है। 'अत्थं देखिय जाणदि पच्छा सद्दहदि भंगेहिं' यह प्रमाण है।

१८ प्र०—ज्ञान श्रद्धानसे पहिले होता है फिर ज्ञान से श्रद्धानको महत्व आता है या श्रद्धानसे ज्ञान को महत्व आता है ?

उ०—ज्ञानके बाद श्रद्धान होता है। लेकिन इन दोनों में निश्चय करनेकी ताकत नहीं है। निश्चय सम्यक्त्वसे ही होता है। इसलिये सम्यक्त्वको महत्व प्राप्त है, ज्ञान तथा श्रद्धान इन दोनों को नहीं है।

१९ प्र०—सम्यक्त्व ज्ञान, और श्रद्धानसे महत्व-शाली है या नहीं ?

उ०—सम्यक्त्वसे निश्चय ज्ञान होता है। जब तक सम्यक्त्व नहीं होता तबतक संशय, विपरीत, अनध्यवसाय ज्ञान ही होता रहता है। इसलिये उस ज्ञान को अज्ञान कहते हैं। तथा श्रद्धानको भी मिथ्या

श्रद्धान कहते हैं इसलिये सम्यक्त्वको महत्त्वशाली कहा है।

२० प्र०—सम्यक्त्व कब होता है ?

उ०—शुद्ध निश्चय नयकी विवक्षामें वस्तु-स्वरूपका उपलम्भ करने वाले धर्मको ज्ञान कहते हैं। वही सम्यक्त्वरूपसे होता है। तथा मिथ्यात्व कर्मके अभावके (क्षय, क्षयोपशम, उपशम) विना सम्यक्त्व होता नहीं। सम्यक्त्व होनेपर दर्शन, ज्ञानमें यथार्थता आती है।

२१ प्र०—दर्शनका अर्थ श्रद्धान रूपमें क्यों लिया जाता है ?

उ०—मोक्षका प्रकरण होनेसे दर्शनका अर्थ श्रद्धान लेते हैं। दर्शनका अर्थ आलोक और द्रव्येन्द्रियभी होता हैं ये दोनों अनात्मरूप होनेसे अनात्माको भी मुक्तिका प्रसंग आता है। इसलिये तत्वार्थ (आत्मपदार्थ) के उपयोगमें ही दर्शनके समान ज्ञानका भी निर्विकल्परूप उपयोग होनेसे औरउसीप्रकार श्रद्धान होनेसे मोक्ष मार्गरूप होनेसे दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धानरूपमें लेते हैं। निश्चित किये हुये परिगृहीत

अर्थमें ही श्रद्धानकी प्रवृत्ति होती है।

२२ प्र०—प्रथम आत्माको दर्शन देखता है? या ज्ञान होता है? या श्रद्धान होता है?

उ०—प्रथम आत्मामें दर्शनोपयोग होता है। अनंतर उसका ज्ञान होता है तदनंतर श्रद्धान होता है ऐसा क्रम है। जबतक मिथ्यात्व कर्मका उदय रहता है तब तक आत्माका यथार्थ दर्शन न होकर आत्माके विषयमें अन्य कल्पना करके तत्त्व-रूप दर्शन होता है। सम्यक्त्व होनेके पहिले यथार्थ रूपमें आत्मदर्शन नहीं होनेसे भी बाह्य रूप ही रहता है। तथा सम्यक्त्वके समयमें ही आत्माका दर्शन ज्ञान, श्रद्धान होता है। इसलिये दर्शन शब्द का अर्थ श्रद्धानरूपमें लिया है।

२३ प्र०—प्रशम किसे कहते हैं।

उ०—मिथ्यात्व कर्मका उपशम क्षय या क्षयोपशम होनेसे तथा कषायोंके मंद हो जानेसे शान्त परिणामोंका होना उसे प्रशम कहते हैं।

२४ प्र०—संवेग किसे कहते हैं?

उ०—मनका वेग आत्माको ओर होना उसे

संवेग कहते हैं अथवा धर्ममें आसक्ति होनेको संवेग कहते हैं।

२५ प्र०—निर्वेग किसे कहते हैं ?

उ०—बाह्य पदार्थोंमें मनका वेग न होकर उससे पराङ्मुख होना उसे निर्वेग कहते हैं।

२६ प्र०—आस्तिक्य किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा आदि षड्द्रव्य, नव पदार्थ रूप सत्व, संसार मोक्षादि कर्मादिकोंका अस्तित्व मानना आस्तिक्य है।

२७ प्र०—अनुकंपा किसे कहते हैं ?

उ०—दुःखी जीवोंको देखकर मनमें दया होना उसे अनुकंपा कहते हैं।

२८ प्र०—स्वानुकंपा किसे कहते है ?

उ०—आत्मा कर्मोंसे तथा भ्रमसे युक्त हो गया है यह देखकर कर्म रागद्वेष मोहादिसे विरागी होकर आत्माके उद्धारका भाव होना स्वानुकंपा कहते हैं।

२८ प्र०—सम्यक्वत्के आठ अंग क्या हैं ?

उ०—सम्यक्त्वके आठ अंग निःशंक निष्कांक्ष

आदि कहे हैं वे सबही सम्यक्त्वकी पर्याय हैं।

३० प्र०—सम्यक्त्वके भेद कितने हैं?

उ०—उपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व ऐसे सम्यक्त्वके तीन भेद हैं।

३१ प्र०—उपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ०—मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इस प्रकार अनादि कालकी अपेक्षा पाँच प्रकृतियोंका उपशम होने पर जो सम्यक्त्व होता है उसे उपशम सम्यक्त्व कहते हैं। सादि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षासे मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माय, लोभ इन सात प्रकृतियोंका उपशम होने पर जो सम्यक्त्व होता है उसे सादि उपशम कहते हैं।

३२ प्र०—क्षयोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ०—जो सर्वघाति स्पर्द्धकोंका क्षय, सद्वस्था रूप उपशम तथा देशघाति स्पर्द्धकोंका उदय होनेसे हो उसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। इसेही वेदक सम्यक्त्वभी कहते हैं। क्योंकि वेदक नाम अनुभविताका है। सम्यक् प्रकृतिके उदयको अनुभवते

हैं। इसलिये उसे वेदकसम्यक्त्व कहते हैं।

३३ प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—सप्त प्रकृतियोंका अत्यंत क्षय होने पर जो सम्यक्त्व होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

३४ प्र०—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—मिथ्यात्व सम्यक् मिथ्यात्व सम्यक् प्रकृति इन तीन कर्मोंका उपशम करके तथा अनन्तानुबंधी चौकड़ीका विसंयोजन करके जो सम्यक्त्व होता है उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

३५ प्र०—अन्य अपेक्षासे सम्यक्त्वके कितने भेद हैं?

उ०—निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व ऐसे अध्यात्मको अपेक्षासे दो भेद हैं। अथवा सराग तथा वीतराग भी दो भेद हैं।

३६ प्र०—निश्चय सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ०—जो गुण गुणीका भेद न करके अभेदरूपसे आत्माका अनुभव होता है वह निश्चय सम्यक्त्व है।

३७ प्र०—व्यवहार सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—गुण गुणीका भेदरूप जो सम्यक्त्व है उसे व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

३८ प्र० सराग सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—प्रशम, संवेग अनुकंपा, आस्तिक्य, लक्षण रूप जो सम्यक्त्व है। उसे सरागसम्यक्त्व कहते हैं।

३९ प्र०—वीतराग सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मशुद्धि स्वरूप सम्यक्त्वको वीतराग सम्यक्त्व कहते हैं।

४० प्र०—सम्यक्त्वके स्वभावरूप पर्याय कौनसे हैं ?

उ०—सम्यक्त्वका स्वभावरूप परिणमन होना स्वभाव पर्याय है। और विपरीत कर्मोदयसे विपरीत पर्याय होना विभावरूप पर्याय है। जैसे मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा आदि तथा अष्टमदरूप तथा तीन मूढतारूप २५ दोष ये सब विभावपर्याय हैं।

४१ प्र०—स्वभाव पर्यायके कौनसे भेद हैं ?

उ०—दो, सर्वदेश पर्याय और एकदेश पर्याय।

४२ प्र०—सर्वदेश पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—जो यथार्थ परिणमन सिद्धोंमें होता है उसे सर्वदेश सम्यक्त्व पर्याय कहते हैं।

४३ प्र०—एक देश पर्याय किसे कहते हैं ?

उ०—क्षयोपशम सम्यक्त्व और उपशम सम्यक्त्वके जितने भेद होते हैं तथा निःशंकादि निर्मदादि अमूढतादि चलमल अगाढादि एक देशपर्याय हैं।

४२ प्र०—चल दोष किसे कहते हैं?

उ०—जिस सम्यक्त्वमें, सम्यक् प्रकृति नामक देश घाति कर्मका उदय होने से चलायमान श्रद्धान होता है। उसे चलदोष कहते हैं।

४३ प्र०—मलदोष किसे कहते हैं?

उ०—उपरोक्त देशघाति कर्मके उदयसे मलिनता आती है उसे मल दोष कहते हैं या मल सम्यक्त्व कहते हैं।

४४ प्र०—अगाढ सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ०—उपरोक्त देशघाति कर्मके उदयसे श्रद्धा जितनी दृढ़ होनी चाहिये उतनी दृढ़ न होनेसे अगाढ सम्यक्त्व कहते हैं। वृद्धके हाथकी लकड़ी समान।

४५ प्र०—क्या औरभी सम्यक्त्वके भेद हैं?

उ०—उत्पत्तिकी अपेक्षासे भी सम्यक्त्वके दश भेद हैं।

४६ प्र०—सम्यक्त्व गृहीत होता है या अगृहीत?

उ०—सम्यक्त्व गृहीत नहीं है किंतु स्वयंसिद्ध आत्माका एक गुण है, तथा तद्रूप परिणमनरूप भी सम्यक्त्वपर्याय स्वयमेव परिणमनरूप है। इसलिये सम्यक्त्व गृहीत नहीं, गृहीत तो मिथ्यात्व ही होता है। सम्यक्त्व उत्पन्न भी नहीं होता।

४७ प्र०—सम्यक्त्व उत्पन्न क्यों नहीं होता?

उ०—सम्यक्त्व गुण है, और गुण न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। वह स्वयमेव है किंतु मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उसका विभाव रूप परिणमन हो रहा था उस कर्मका अभाव होनेसे उस सम्यक्त्वगुणका स्वभावरूप परिणमन होता है इस अपेक्षासे उसे उत्पन्न होता है' ऐसा कहते हैं। लेकिन विचार करनेसे वह ठीक प्रतीत नहीं होता इससे बहुत दोष आते हैं। असत्तकी उत्पत्ति नहीं होती है यह भी जानना।

चारित्राधिकार

१ प्र०—चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—'चर्यते' इति चारित्रं' जिसे आचरण किया जाता है उसे चारित्र कहते हैं।

२ प्र०—चारित्रके कितने भेद हैं ?

उ०—सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापना चारित्र परिहार विशुद्धि चारित्र, सूक्ष्म सांपरायिक चारित्र और यथाख्यात चारित्र ऐसे पांच भेद हैं। कभी २ स्वरूपाचरण चारित्रका भी समावेश करते हैं।

३ प्र०—स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—आत्माके स्वरूपका चारित्र (आचरण) होना उसे स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

४ प्र०—सामायिक चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—'मैं सब प्रकारके सावद्य योगसे विरत हूँ' इस प्रकार द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा सकल सावद्य योगके त्यागको सामायिक चारित्र कहते हैं।

५ प्र०—छेदोपस्थापना चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—उस एक व्रतका छेद तथा दो तीन आदि के भेदसे उपस्थापना करनेको छेदोपस्थापना चारित्र कहते हैं।

६ प्र०—यह चारित्र किस नयकी अपेक्षा रखता है?

उ०—यह चारित्र पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा रखता है।

७ प्र०—परिहारविशुद्धि चारित्र किसे कहते हैं?

उ०—जिसमें हिंसाका पूर्ण परिहार ही प्रधान है। ऐसे शुद्धि-प्राप्त संयमको (आचरणको) परिहार-विशुद्धि चारित्र कहते हैं। इसके संयतसे आहार-विहार आदिमें प्राणियोंकी हिंसा नहीं होती है।

८ प्र०—सूक्ष्म सांपराय चारित्र किसे कहते हैं?

उ०—सांपराय कषाय भावको कहते हैं। जिनकी कषाय सूक्ष्म हो गई है उसे सूक्ष्म सांपरायिक चारित्र कहते हैं।

९ प्र०—यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं?

उ०—आगममें शुद्धात्माका स्वरूप जैसा कहा है वैसा ही आचरण होना, उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

१० प्र०—चारित्र गुण है या पर्याय ?

उ०—चारित्र यह आत्माका धर्म है वह आत्मा का गुण है तथा वह गुण विना पर्यायके नहीं होता है इसलिये पर्याय भी है। क्योंकि गुणसे भिन्न-स्व-रूपी पर्याय नहीं होती है। श्री कुंदकुंदाचार्यने कहा भी है "चारित्तं खलु धम्मो" धर्म, स्वभाव, गुण एकार्थवाची हैं।

११ प्र०—चारित्र सम्यक्त्वसहित है या नहीं ?

उ०—चारित्र सम्क्त्वसहित भी होता है और मिथ्यात्वसहित भी होता है। जब तक मिथ्यात्व कर्मका उदय होता है तब तक वह चारित्र मिथ्यात्व सहित होता है तब तक उस चारित्रका स्वभाव रूप आचरण नहीं होता है। सम्यक्त्व प्राप्त होनेपर ही उस चारित्रका स्वभावरूप आचरण होता है।

१२ प्र०—सम्यक् चारित्र और मिथ्याचारित्रमेंक्या अंतर है ?

उ०—सम्यक्चारित्र यथार्थचारित्र होता है और मिथ्याचारित्र यथार्थ नहीं होता इतना अंतर है।

१३ प्र०—सम्यक् चारित्रका आचरण द्रव्यदृष्टि रख

कर होता है या पर्यायदृष्टि रखकर ?

उ०—सम्यक् चारित्रका ध्येय द्रव्यरूपका रहता है। द्रव्य गुण पर्यायरूप अभेद-दृष्टि रखकर सम्यक् चारित्र होता है और मिथ्या-दृष्टि द्रव्यगुणको छोड़ कर केवल विभावपर्याय दृष्टिका ही ध्येय रखता है। इस प्रकारका दोनोंमें अन्तर है।

१४ प्र०—इंद्रिय-जेता कौन है ?

उ०—सम्यक् चारित्रधारी इंद्रिय-जेता है, क्योंकि इंद्रियां मनकी दास है और मन इंद्रियोंका प्रभु है जो इंद्रियोंका दास होता है वह सम्यक् चारित्रवान भी नहीं है।

१५ प्र०—चारित्रका क्या फल है ?

उ०—आस्रवका अभाव होना तथा संवर होना चारित्रका फल है।

१६ प्र०—रागद्वेष आत्माके हैं या नहीं ?

उ०—रागद्वेष चारित्रके विभावपरिणतिरूप परिणमन हैं यानी ये रागद्वेष आत्माके स्वभावरूप नहीं हैं।

१७ प्र०—रागद्वेषकी उत्पत्ति किन किन कारणोंसे होती है ?

उ०—परवस्तुमें ममतासे रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है और परवस्तुकी ममता न होनेपर उनका नाश होता है।

१८ प्र०—रागद्वेषकी जड़ कौन है ?

उ०—परवस्तुके ऊपर जो ममताभाव होता है वही रागद्वेषकी जड़ है। वह परममता कोई वस्तु या पदार्थ या स्वभाव नहीं है, इसलिये रागद्वेषका नाश होता है।

१९ प्र०—रागद्वेष क्या चीज है ?

उ०—रागद्वेष, परिणामकी चंचलता रूप है। यह चंचलता परिणामका स्वभाव नहीं, इस चंचलता से परिणाम मलीन होता है।

२० प्र०—यह रागद्वेष भाव निमित्तसे होता है या नैमित्तिकसे ?

उ०—यह रागद्वेष न तो निमित्तसे होता है और न नैमित्तिकसे होता है। किंतु निमित्त नैमित्तिक के ऊपर ममताभाव होनेसे होता है।

२१ प्र०—निमित्त नैमित्तिकका अभाव होता है या नहीं ?

उ०—निमित्तका तथा नैमित्तिकका अभाव नहीं होता है। वे अनाद्यनंतकाल तक रहे व रहेंगे, इनका अभाव नहीं है।

२२ प्र०—यह परममता क्यों होती है?

उ०—अपने ज्ञानदर्पणमें अन्यवस्तुकी झलक होनेमे ममता होती है अपने ज्ञानदर्पणमें निमित्तका प्रतिबिंब पड़ता है वह अपनेसे अभिन्न मानकर ही ममता होती है, अपनेसे भिन्न मानकर 'अपना रूप या स्वभाव नहीं' ऐसा ज्ञान होनेपर वह परवस्तु परसे ममता हट जाती है।

२३ प्र०—परवस्तुसे ममताकी उत्पत्ति कैसे होती है?

उ०—पर-वस्तुकी ममता स्वपर-भेद-विज्ञान न होने से उत्पन्न होती है, अज्ञान ही परवस्तु ममता की जड़ है।

२४ प्र०—इस पंच परावतन संसारका कारण या जड़ कौन है?

उ०—इस पंच परावर्तन रूप संसारका कारण अज्ञान तथा ममता है।

२५ प्र०—संसारका उपादान कारण कौन है।

उ०—संसारका उपादान कारण कोई नहीं है। उपादान कारण केवल वस्तु या द्रव्यादिकमें होता है संसार न वस्तु है, न द्रव्य है, न गुण है, न स्वभाव पर्याय है, केवल विभाव पर्याय है इसलिये संसार का उपादान कारण कोई भी नहीं है।

२६ प्र०—ममताका और चारित्रका क्या संबंध है

उ०—ममता का नाश कर पर-वस्तुके अधीन न होना यही चारित्र है। चारित्र अपने स्वरूप में स्थिर करता है और पर-वस्तु की ममता पर-वस्तुके अधीन बनाती है इतना अंतर है परवस्तुके अधीन न होना यही चारित्र है।

२७ प्र०—परवस्तु के त्यागसे चारित्र होता है ?

उ०—पर-वस्तुका त्याग न कर परवस्तुकी ममता का त्याग करने को चारित्र कहते है। क्योंकि पर-वस्तु तो हट नहीं सकती वह शाश्वत रहेगी ही इस लिए पर-वस्तु का त्याग हो ही नहीं सकता। परवस्तु हम से दूर नहीं होती उस पर जो ममत्व भाव है उसका ही त्याग कर सकते हैं

२८ प्र०—चारित्र और तप में क्या भेद है ?

उ०—चारित्र अपनी आत्माका प्रधान गुण है। तप चारित्र गुण का पर्याय है अथवा दूसरी अपेक्षा से चारित्र अतंरंग तपोंसे संस्कारित होता है तथा चारित्र संवरका कारण है। और तप निर्जरा का कारण है। चारित्र गुण की पर्याय जो दश धर्म हैं उनमें तपधर्मका भी एक नाम हैं अतः वह चारित्रकी पर्याय ही होता है।

२६ प्र०—चारित्र गुण की पर्याय और कौन २ हैं ?

उ०—व्रत, समिति, गुप्ति धर्म अनुप्रेक्षा, परीषहजय, तप इत्यादि सब चारित्रके पर्याय हैं।

३० प्र०—तपका फल क्या है ?

उ०—उदयागत कर्मका फल रूप जो रागद्वेष है उसका अभाव होना यह तपका फल है, राद्वेषका नाश करना यही तप का फल है।

३१ प्र०—तप के कितने भेद हैं ?

उ०—अन्तरंग तपके ६ भेद हैं और बहिरंग तप के ६ भेद हैं इस प्रकार तप के १२ भेद हैं।

३२ प्र०—चारित्र के कितने भेद हैं ?

उ०—निश्चय चारित्र और व्यवहार चारित्र। ऐसे दो भेद हैं।

३३ प्र०—निश्चय चारित्र किसे कहते हैं।

उ०—जो अद्वैतात्म-स्वरूप आचरण होता है उसे निश्चय चारित्र कहते हैं।

३४ प्र०—व्यवहार चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—गुण,गुणी भेद रूप जो आचरण होता है उसे सद्भूत व्यवहार चारित्र कहते हैं। उसी चारित्र के व्रत समिति गुप्ति धर्म आदि भेद हैं।

३५ प्र०—असद्भूत व्यवहार चारित्र कौनसा है ?

उ०—जो आत्मस्वरूप चारित्र न होकर केवल बहिरंग तप स्वरूप अनशनादि चारित्र होता है उसे असद्भूत व्यवहार चारित्र कहते हैं।

३६ प्र०—असद्भूत चारित्र किसके होता है ?

उ०—मिथ्यादृष्टिको असद्भूत चारित्र होता है

३७ प्र०—सम्यग्दृष्टि के कौन सा चारित्र होता है ?

उ०—शुद्ध निश्चय चारित्र तथा गुण गुणी भेद सहित सद्भूत चारित्र होता है।

३८ प्र०—कर्मोंके आस्रवको रोकने वाला कौन सा चारित्र है ?

उ०—शुद्ध निश्चय चारित्र पूर्णरूपसे कर्मास्रवको

रोकता है। तथा सद्भूत व्यवहार चारित्र एक देश कर्मास्रवको रोकता है।

३६ प्र०—असद्भूत व्यवहार चारित्रका फल क्या है?

उ०—असद्भूत व्यवहार चारित्रसे कर्मास्रव और कर्मबंध होता है यही फल है। उससे संसार परिपाटी बढ़ती है।

४० प्र०—मोक्ष किस चारित्रसे होती है।

उ०—शुद्धनिश्चय चारित्र जो कि अद्वैत आत्म-स्वरूप आचरणरूप (सम्यग्दर्शन ज्ञानकी स्थिरता-रूप) चारित्र है उस से मोक्ष होती है। यह कथन साक्षात् की अपेक्षा से है। परंपरा की अपेक्षा से सद्भूत व्यवहारनय से माना जाता है।

४१ प्र०—सिद्ध परमात्मामें कौनसा चारित्र है?

उ०—शुद्ध निश्चयरूप यथाख्यात चारित्र है।

४२ प्र०—शुद्ध निश्चय अद्वैत चारित्रका स्वरूप क्या है?

उ०—जो ज्ञानकी स्थिरतारूप चारित्र है वही शुद्ध निश्चय चारित्र है वही अद्वैतरूप है उसमें गुण गुणीका भी भेद कथन नहीं होता। ऐसा निर्विकल्प

चारित्र है वही चारित्र उपादेय है। वही स्व-समय-सारूप चारित्र है।

४३ प्र०—क्या आज कल भी यह निश्चय-चारित्र हो सकता है ?

उ०—आज कल भी निर्विकल्प चारित्र होता है किन्तु उसका काल बहुत कम है। उपशम श्रेणी क्षपक श्रेणी रूप निर्विकल्प उपशान्त या क्षायिकरूप चारित्र नहीं होता। तथापि ध्यानादिकाल में सामायिक चारित्र जब स्वानुभूति समय में होता है तब वह स्वानुभूतिरूप निर्विकल्पावस्था होती है उसी समय निर्विकल्पक चारित्र भी माना जाता है। निर्विकल्प ध्यान जिस तरह स्वात्मानुभूति में होता है उसी तरह निर्विकल्प ज्ञान तथा निर्विकल्प चारित्र भी होता है। इस पंचम कालमें श्रेणी के नीचे सातवें गुणस्थान तक निर्विकल्प ध्यान तथा निर्विकल्प ज्ञान तथा निर्विकल्प चारित्र का सद्भाव माना है उसका निषेध पूर्वाचार्यो ने नहीं किया है। इस प्रकार निर्विकल्पक चारित्र के विना कर्म-क्षय नहीं होता है। इसके विना सब अन्तरंग बहिरंग तप पंच महाव्रतादि सब निरर्थक धर्म हैं।

४४ प्र०—निर्विकल्प चारित्रका इतना प्रभाव है ?

उ०—हां, निर्विकल्प चारित्र भी उसी समय होता है कि जिस समय यथार्थ स्वानुभूति होती है। स्वानुभूति सम्यक्त्व निर्विकल्प चारित्र निर्विकल्प ध्यान, निर्विकल्प ज्ञान आदि उसी कालमें होते हैं। सम्यक् चारित्रके विना मिथ्यात्वी पंचमहाव्रत, तप आदि सब करते हुये भी कर्मनिर्जरा नहीं करते हैं तथा मोक्षमार्गमें भी स्थित नहीं हैं। इसलिये सम्यक् चारित्र का बहुत प्रभाव है।

४५ प्र०—मिथ्याचारित्रसे संवर होता है या नहीं ?

उ०—मिथ्याचारित्रसे आस्रवनिरोधरूप संवर भाव नहीं होता है। क्योंकि मिथ्या चारित्रसे कर्म-बंध ही होता है। कर्मकी निर्जरा तथा संवर नहीं होता है।

४६ प्र०—मिथ्याचारित्र वालोंका वेष कौन सा है ?

उ०—मिथ्याचारित्र वालोंका भेष कौनसा भी होता है। मिथ्याचारित्र वाले कुलिंगी रहते हैं तथा जैनलिंग-धारी मुनि भी होते हैं।

४७ प्र०—क्या दिगंबर मुनि मिथ्याचारित्रवान हो सकते हैं ?

उ०—हां, दिगंबर वेष धारण करने वाले भी मिथ्या चारित्रवान भी (अभव्य जीव दिगंबर दीक्षा लेता है) रहते हैं। इसलिये वे मिथ्या-चारित्रवान दिगंवर मुनि भी कर्मोंकी निर्जरा नहीं करते हैं। कर्मबंध ही करलेते हैं। और सम्यक्चारित्रवान कर्मनिर्जरा करके मोक्ष जाते हैं।

४८ प्र०—सम्यक्चारित्रधारी गुरुओंका भेष कौन सा है?

उ०—सम्यक् चारित्रधारी गुरुओंका भेष निर्ग्रन्थ रूप ही रहता है। तथा उत्कृष्ट श्रावकोंका (ऐल्लक क्षुल्लक भेष) भी रहता है। और सम्यक्चारित्र धारी परम दिगम्वर वेष-धारी भाव-लिंगी कर्मोंका क्षय करके मोक्षमें जा सकते हैं। अन्य वेषसे मोक्षमें नहीं जा सकते।

फुटकर प्रश्नोत्तर

१ प्र०—शंका और संशय में क्या अंतर है?

उ०—मूल वस्तुकी यथार्थ प्रतीति रहते हुये भी विशेष जाननेके लिये आकांक्षा होना उसे शंका कहते हैं। शंका देश-घाती है। तथा देशघातीमेंही रूढ है। क्योंकि शंका मूल विषय रूप सम्यक्त्व का घात न करते हुये अतिचार उत्पन्न करती है। वह तत्वार्थसूत्रमें प्रसिद्ध ही है। शंकाकांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरति-चाराः ॥२३-७॥

यानी—जैनसिद्धान्तके तत्वोंकी दृढ़-प्रतीतिके साथ ही किसी एक बातमें विशेषज्ञानके लिये शंका करना यह शंका नामका अतिचार है। वह अति-चार सम्यक्त्वका पूरा घातक नहीं है। तथापि दोष उत्पन्न करता है। वह शंका देशघाती है। देशघाती ही अतिचार रूप होता है। तथा संशय सर्वघाती है संशयका लक्षण आचार्योंने ऐसा किया है कि

"द्विकोटिस्पर्शि ज्ञानं संशयः,, उभय कोटिको स्पर्श करने वाले ज्ञानको संशय कहते हैं। संशयमें मूल वस्तुके ज्ञानकी प्रतीति नहीं है। तथा झूलेके समान दोनों कोटि में झूलता रहता है। जैसे यह चांदी है या सीप है? किसीमें भी निश्चय नहीं है और शंकामें निश्चित-वृत्ति रहती है तथापि दोषोत्पादक होनेसे देशघाती है।

२ प्र०—अवग्रह और अनध्यवसायमें क्या अंतर है

उ०—विषय (पदार्थ) और विषयी (इंद्रियों) का योग्य द्रव्य, क्षेत्र कालादिकी मर्यादामें सन्निपात होने पर उत्पन्न होनेवाले आद्यज्ञानको अवग्रह कहते हैं। इस अवग्रह ज्ञानमें मूल विषयकी प्रतीति (निश्चय) रहती है। और अनध्यवसायमें (जैसे मार्गमें चलते हुये पैरोंको कुछस्पर्श होनेपर 'कुछ है' ऐसा आभास होनेको अनध्यवसाय कहते हैं।) मूल विषयकी प्रतीति नहीं रहती इतना अंतर है। अवग्रह सम्यग्ज्ञान है और अनध्यवसाय मिथ्याज्ञान है।

३ प्र०— ईहा ज्ञानमें और संशय में क्या अन्तर है?

उ०—ईहा ज्ञानमें वस्तुकी प्रतीति (निश्चय) रहते हुये विशेष रूप, जाति, धर्म, उम्र, भाषा आदि की अपेक्षासे जाननेकी आकांक्षा रहती है। और संशयमें मूल वस्तुकी प्रतीति (निश्चय) नहीं होनेसे वह संशय दोनों पक्षमें लटकता रहता है। इतना अन्तर है।

४ प्र०—स्याद्वाद और नयमें क्या अंतर है ?

उ०—स्याद्वाद वचन-स्वरूपी है और नय ज्ञानात्मक है इस प्रकार इन दोनोंमें अंतर है। इसीका खुलासा राजवार्तिक शास्त्रमें कहा है। अधिगम हेतु दो प्रकारका है १ स्वाधिगमहेतु। २ पराधिगम हेतु जो अपने ही ज्ञानमें कारण हो वह स्वाधिगम हेतु है इसलिये वह ज्ञान स्वरूप है। इसके दो भेद है। १ प्रमाण स्वाधिगम, २ नय स्वाधिगम ।

जो दूसरे को ज्ञान करानेमें कारण हो वह पराधिगम हेतु है। वह वचन रूप है क्योंकि दूसरेको ज्ञान करानेमें कारण वचन ही है। इस पराधिगम हेतु को श्रुतज्ञान प्रमाण कहते है। स्याद्वादनय युक्त इस श्रुतज्ञान (आगमके) प्रमाणके द्वारा हर एक

पर्यायमें सप्तभंगीद्वारा जीव आदि पदार्थोंका ज्ञान होता है। इस प्रकार स्याद्वाद वचन रूप है और नय ज्ञानात्मक है इतना अंतर है।

५ प्र०—अर्थग्राही और पर्यायग्राही नय कौन २ हैं?

उ०—नयके सात भेद हैं १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, ६ समभिरूढ, ७ एवंभूत। इनमें से आदिके तीन नय अर्थग्राही हैं और अन्तके चार पर्यायग्राही हैं।

६ प्र०—बुद्धि और श्रद्धा उनमें क्या अन्तर है?

उ०—बुद्धि मतिज्ञानकी पर्याय है और श्रद्धा सम्यक्त्वकी पर्याय मानी है। इतना अन्तर है।

७ प्र०—पर्याप्ति और प्राणमें क्या अन्तर है?

उ०—पर्याप्ति कारण है और प्राण उसका कार्य है। ऐसा श्रीगोमट्टसार ग्रन्थमें कहा है। वह कथन जीवविपाकी पर्याप्तियोंकी अपेक्षासे किया है। तथापि श्रीधवलाकारने पर्याप्तिके दो भेद किये हैं एक जीव-विपाकी दूसरा अजीवविपाकी। सब जीव-विपाकी ही पर्याप्ति मानने पर आहार प्राण नहीं है तथा आयुप्राण हैं तथापि आयु पर्याप्ति नहीं है। इसलिये

आहार पर्याप्ति अजीवविपाकी भी सिद्ध है इसलिये अजीव-विपाकी पर्याप्तियोंका तथा प्राणोंका तो कारण कार्यरूप संबन्ध नहीं है। तथा जीवविपाकी पर्याप्तियोंका और प्राणोंका कार्यकारण संबन्ध है इतनाही संक्षेपमें यहां समझ लेना चाहिये विशेष जानना हो तो श्रीधवलाग्रंथमें देखिये।

८ प्र०—पाप और कषायमें क्या अन्तर है?

उ०—कषाय कारण है, पाप कार्य है इतनाही अन्तर है।

९ प्र०—निर्विकल्प और शुक्लध्यानमें क्या अन्तर है?

उ०—निर्विकल्प तथा ध्यान इनमें कोई अन्तर नहीं है दोनों एकार्थपर्यायवाची है। तथा आगम भाषामें या शास्त्रीय भाषामें शुक्ल-ध्यान जिसे कहते हैं उसे ही अध्यात्म शास्त्रोंमें निर्विकल्प ध्यान कहते हैं। इसलिये कुछभी अन्तर नहीं है।

१० प्र०—'निर्विकल्प ध्यान इस कालमें होता है और शुक्लध्यान इस कालमें नहीं होता' ऐसा कहा है फिर दोनोंका अर्थ एक कैसे है?

उ०—निर्विकल्प ध्यानके दो भेद किये हैं एक

श्रेणीआरोहणरूप दूसरा श्रेणीआरोहणरहित । श्रेणी आरोहणरूप निर्विकल्प या शुक्ल ध्यान इस पंचम कालमें नहीं होता है। किन्तु स्वात्मानुभूति शुक्लध्यान से ही होती है स्वात्मानुभूति रूप शुक्ल-ध्यान सातवें गुणस्थानसे शुरू होता है। श्रेणीसे अधस्तन शुक्ल ध्यान इस कालमें होता है। स्वात्मानुभूतिरूप शुक्ल ध्यान ही किंचित काल रहता है। और श्रेणीआरोहण रूप शुक्लध्यान कर्मका क्षय करनेवाला क्षपकश्रेणीरूप या उपशम श्रेणीरूप शुक्लध्यान बहुत काल तक रहने वाला है बहुत काल तक रहनेवाला ध्यान इस कालमें नहीं होता है। श्री परमात्मप्रकाश ग्रन्थकी टीका में शुक्ल ध्यान और निर्विकल्प ध्यान एक ही माना है यह आगम प्रमाण है।

२१ प्र०— पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ ध्यान अपध्यान हैं या नहीं?

उ०—पिंडस्थ पदस्थ, रूपस्थ ध्यान अपध्यान भी हैं और सुध्यान भी है। पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ ध्यान आर्त रौद्ररूप तथा धर्म ध्यानरूप भी हैं। यह कथन की अपेक्षासे सिद्ध होते है। इसका विशेष वर्णन

गुरुमुखसे ही जान सकते है।

१२ प्र०—जीव और आत्मा इन दोनोंमें क्या अन्तर है ?

उ०—रागादि विकारसहितको तथा जन्म मरणरूप आधिसे युक्त अवस्थाको जीव कहते हैं और रागादि विकार रहित अवस्थामें आत्मा कहते हैं। जीव द्रव्य रूप भी है, जीव गुण रूपभी है, जीव पर्याय रूप भी है। जीव विभाव-सहित है और आत्मा विभाव-रहित स्वभाव शुद्ध है इतना अन्तर है।

१३ प्र०—अन्तरात्मा और जीवमें क्या अन्तर है ?

उ०—अन्तरात्मा यद्यपि सकर्मक या विकार सहित है तो भी उसकी दृष्टि परमात्मामें है। तथा एक देश स्वभावरूप परिणमन होने लगा है किन्तु जीवकी दृष्टि विकारमें ही है। शुद्धपरिणमन या स्व-भाव प्रणाली अभी एक देशभी नहीं हुई है। इतना ही नहीं किन्तु शुद्ध स्वभावका ज्ञानभी नहीं हुआ। ऐसी मिथ्यात्व-अवस्थामें जीव संज्ञा होती है। और जो सम्यक्त्वी हुआ है किन्तु वह पूर्ण स्वभावाचरण वाला न होने से अन्तरात्मा है।

१४ प्र०—मन और जीवमें क्या अन्तर है ?

उ०—मन यह निश्चय नयसे आत्माका खापास गुण है और जीवका स्वरूप अशुद्ध द्रव्य रूप है। इसी कारण मनभी मिथ्या विकल्पोंसे मलिन हुआ है। मलीन मन तथा मलीन जीव का परम्परा गुण गुणीका संबंध है। इस कारण मनको जीव मानते हैं। जीव स्वरूपही मन है। ऐसा तात्पर्य है।

१५ प्र०—मन और आत्मामें क्या अन्तर है ?

उ०—ऊपर कहा है तदनुसार आत्मा यह शुद्ध है और शुद्धात्म-स्वरूपही शुद्ध निर्मल मन है इन दोनोंका गुण गुणी संबंध है। मन गुण है और आत्मा गुणी है।

१६ प्र०—मन और इन्द्रियों में क्या अन्तर है ?

उ०—मन यह आत्माका गुण है। और मनके विभावरूप पर्यायें इन्द्रियां हैं, जबतक मन इन इन्द्रियोंका अवलबन करता है तब तक वह मन मलीन रागादिसहित और मिथ्यासंकल्पोंसे युक्त होता है। तथा मन जब तक इन्द्रियाधीन रहता है तब तक वह मिथ्यात्वी होकर मिथ्याकल्पनाओंसे युक्त रहता है

और सम्यक्त्वी होनेपर मनके अधीन इन्द्रियां रहती हैं। मन मिथ्याकल्पनाजालसे रहित होता है। तथापि जब तक कुछ संकल्प विकल्प युक्त रहता है तब तक मुक्तिको नहीं पाता जब संकल्प विकल्प जालसे रहित होता है तब वह मुक्तिको पाता है।

१७ प्र०—मन मुक्तिको जाता है या नहीं ?

उ०—मनकी मुक्ति या जीवकी मुक्ति एक ही बात है मन मुक्तिसे ही जीवकी मुक्ति होती है। इसलिये जीवमें मनका आरोप करके कथन करते हैं।

१८ प्र०—मोक्ष साकार है कि निराकार ?

उ०—मोक्ष साकारभी है और निराकार भी है।

१९ प्र०—साकार कैसे कहते हैं ?

उ०—आत्माके असंख्यातप्रदेशी संस्थानरूप जो आकार है उसकी अपेक्षासे यहांपर आकार है। विकल्परूप आकारका यहां पर कथन नहीं है। जैसे कहा है कि (आकारोऽर्थविकल्पःस्यात्) इस प्रकारके आकारका कथन नहीं इसलिये जीवद्रव्य या आत्मद्रव्यका जो सिद्धोंमें पुरुष जैसा आकार है उस द्रव्य

के आकाररूप अपेक्षासे साकार माना है अतः वह द्रव्यकी अपेक्षासे आकार है भाववती गुणकी अपेक्षा से आकार नहीं है इसलिये मोक्ष निराकार भी है।

२० प्र०—द्रव्य, गुण, पर्याय इन तीनोंमें से किसको मोक्ष होती है ?

उ०—द्रव्यको भी, गुणको भी और पर्यायको भी मोक्ष होती है ऐसा श्री जिनेश्वरने कहा है।

२१ प्र०—पर्याय को मोक्ष किस तरह होती है ?

उ०—पर्याय के दो भेद हैं एक द्रव्य-पर्याय और दूसरी गुण-पर्याय। पुरुषाकाररूप सिद्धोंका आकार द्रव्य पर्याय है और अनंत-ज्ञानादि गुणके ज्ञानरूप पर्याय जो कि ममत्वरूप ग्रहण-बुद्धिसे रहित होनेसे निर्ममत्वरूप है तथा अनंत परद्रव्यों के आकार (प्रतिबिंब)को अपनेसे भिन्न मानना यह गुण पर्याय रूप मोक्ष है। इसी तरह और भी कथन जानना।

२२ प्र०—मोह और अज्ञान में क्या अन्तर है ?

उ०—मोहनीय कर्मके उदयसे मिथ्यात्व (संशय विपरीत अनध्यवसाय) रूप अतत्व-श्रद्धान लक्षण परिणाम होते हैं इसलिये मोह कर्मोदयही विपरीत-

पना अर्थात् अधर्म को धर्म, अतत्त्व को तत्त्व इत्यादि परिणमन करानेमें निमित्त होता है। ज्ञानावरण कर्मके उदयसे जो अज्ञानपना आता है वह अजानता रूप अज्ञान होता है, न कि मिथ्यात्वरूप अज्ञान। इसही लिये अज्ञान दो तरह का है—एक मिथ्यात्वरूप अज्ञान और दूसरा ज्ञानावरण कर्मका विशेष क्षयोपशम या क्षय न होनसे या उदय होने से पदार्थ का अजानपनारूप अज्ञाना। मिथ्यात्वरूप अज्ञान तथा मोह इनमें कार्य-कारण रूप संबन्ध है और दूसरे अज्ञान और मोहका कार्य-कारण संबन्ध नहीं है इस प्रकार दोनों अज्ञानोंमें अंतर है।

२३ प्र०—ऋजुसूत्रनय और भावनिक्षेप इनमें क्या अंतर है?

उ०—ऋजुसूत्रनयका विषय भी वर्तमान पर्याय रूप है और भावनिक्षेप का विषय भी वर्तमान पर्याय रूप ही है। तथापि नय ज्ञानात्मक है और निक्षेप ज्ञेयात्मक है। इस तरह ज्ञान ज्ञेय का अन्तर है।

२४ प्र०—ज्ञप्ति और ज्ञानमें क्या अन्तर है?

उ०—ज्ञान की क्रिया को ज्ञप्ति कहते हैं। और ज्ञानका लक्षण जानने वाला है। ज्ञान कर्ता करण क्रिया इन तीनों में रहता है और ज्ञप्ति सिर्फ क्रियात्मक है। इस प्रकार अन्तर है।

२५ प्र०—ज्ञान और ध्यान में क्या अन्तर है ?

उ०—ज्ञान चला-चल हैं। और ध्यान स्थिर है इतना अन्तर है।

२६ प्र०—स्वभाव और स्वरूप में क्या अन्तर है ?

उ०—स्वगुण पर्याय को स्वभाव कहते हैं। स्वद्रव्य पर्याय को स्वरूप कहते हैं।

२७ प्र०—संकल्प विकल्प में क्या अन्तर है ?

उ०—अहंभावको संकल्प कहते हैं और ममताको विकल्प कहते हैं "अहमिति संकल्पः ममेति विकल्पः" ऐसा इन दोनों का लक्षण है अथवा संकल्प में अभेदपना है और विकल्पमें अभेदपना नहीं हैं इतना अन्तर है

२८ प्र०—मनन और चिंतवन में क्या अन्तर है ?

उ०—मन से पुनः पुनः (बार-बार) जानना

रूप क्रिया करने को मनन कहते हैं और बार २ ऊहापोह=तर्क वितर्क करने को चिंतवन कहते हैं मननमें वस्तुको बार २ जानना रूप क्रिया होती है। और चिंतवन में तर्क वितर्क की विधि, अतर्क का निषेध रूप क्रिया होती है इतना अन्तर है।

२६ प्र०—चिंतवन और स्मरणमें क्या अन्तर है ?

उ०—चिंतवन में तर्क वितर्क होता है और स्मरणमें भूत-कालीन अनुभूत विषय की याद करने का कार्य होता है। अथवा चिंतवनमें वर्तमान कालीन वस्तुका अवलंबन रहता है। तथा स्मरण भूतकालीन अनुभूत विषयका अवलंबन होता है।

३० प्र०—स्मरण और विचार में क्या अन्तर है ?

उ०—स्मरणमें भूतकाल के विषय की याद रहतीहै और उहाहोहात्मक मानसिक व्यापार को विचार कहते हैं। इतना अन्तर है।

३१ प्र०—भावना और विचार में क्या अन्तर है ?

उ०—मानसिक स्थिर-अवस्था को भावना कहते हैं। अर्थात् मनमें जो ज्ञेय (अभिध्येय) है उस रूप परिणमन होनेकी क्रियाको भावना कहते हैं और

तर्क वितर्क रूप ज्ञानको विचार कहते हैं इतना अन्तर है। मन स्थिर करनेको भावना कारण है।

३२ प्र०—श्रद्धा और विश्वास में क्या अन्तर है ?

उ०—श्रद्धा तत्वार्थके सन्मुख होनेको कहते हैं। प्रतीतिमें (अनुभवमें) विश्वास होता है। श्रद्धामें और विश्वास में इतना अन्तर है।

३३ प्र०—रुचि और विश्वास में क्या अन्तर है ?

उ०—आत्मीयता होने को रुचि कहते है। और अनुभूति रूप होना विश्वास है। इतना अन्तर है।

३४ प्र०—भावना और अनुप्रेक्षामें क्या अन्तर है ?

उ०—भावना श्रुतज्ञान रूप है और बार २ चितवन करनेको अनुप्रेक्षा कहते है। अनुप्रेक्षा मतिज्ञान में होती है अनुप्रेक्षा वैराग्य उत्पतिमें कारण है। और भावना वैराग्य होने के बाद होती है। भावना वैराग्य की रक्षक है इतना अन्तर है।

३५ प्र०—तर्क वितर्क में क्या अन्तर है ?

उ०—मनमें होने वाले विचारात्मक दोनों हैं। तर्क विषय ज्ञान-प्रवृत्ति-रूप है और वितर्क दोषों

को दूर करने वाला है इस प्रकार अन्तर है दोनों ही मतिज्ञान स्वरूप हैं।

३६ प्र०—ऊहा और उपोह में क्या अंतर है?

उ०—तर्कका ही दूसरा नाम ऊहा है, वितर्क का ही नाम अपोह है। उपरोक्त ही दोनों में अन्तर है।

३७ प्र०—चारित्र और तप में क्या अन्तर है?

उ०—चारित्र आस्रवका निरोध करने वाला आत्मा का गुण है। और उसी चारित्र गुण को पर्याय तप है, तप मुख्यतासे निर्जरा का कारण है। संवर का भी कारण है। यही अन्तर है।

३८ संक्लेश और क्लेश में क्या अन्तर है?

उ०—मानसिक दुःखको संक्लेश कहते हैं और शारीरिक दुःख को क्लेश कहते हैं। यही अन्तर है।

३९ प्र०—आधि, व्याधि और उपाधि में क्या भेद है?

उ०—आधि मानसिक रोग है व्याधि शारीरिक रोग है, उपाधि परिग्रह स्वरूप है। इस प्रकार अन्तर है।

४० प्र०—ध्रुव और अचल इनमें क्या अन्तर है?

उ०—जो कालकी अपेक्षासे शाश्वत है उसे

ध्रुव कहते हैं और प्रदेशसे प्रदेशांतर न होने को अचल कहते हैं। दोनोंमें नश्वरता नहीं है, शाश्वतकी अपेक्षा दोनों समान हैं। ध्रुववाला देशसे देशान्तर हो सकेगा अचल कभी भी प्रदेशसे देशांतर नहीं हो सकता यह दोनोंमें अन्तर है।

४१ प्र०—मनपर्याप्ति और मनोबल में क्या अंतर है ?

उ०—अनुभूत पदार्थ के स्मरण शक्ति के निमित्तभूत द्रव्यमनरूप आत्मप्रदेशरचना निमित्त कारण है। वह चेतन रूप न होकर आत्म-शक्ति रूप है उस शक्तिके प्रकट होनेके लिये जो शक्ति है वह पर्याप्ति है और उससे होने वाला कार्यरूप सो मनोबल है इसप्रकार मनपर्याप्ति और मनोबल इन में कारण-कार्यरूप संबंध है। दोनों ही क्षयोपशम जनित शक्ति हैं।

४२ प्र०—भाषा पर्याप्ति और रसनेंद्रिय प्राण इनमें क्या अंतर है ?

उ०—पुद्गल स्कंधोंमें भाषा उत्पन्न करने वालो शक्ति तो भाषा पर्याप्ति है। उसके कार्य

रूप वचनबल प्राण है इनमें ज्ञानावरण क्षयोपशम का निमित्त नहीं है, वीर्यान्तराय का क्षयोपशम (वीर्य या शक्ति)है। तथा रसनेंद्रिय प्राणरस जानने की शक्ति रूप ज्ञानात्मक है। इंद्रिय पर्याप्ति और इंद्रिय प्राण इनमें ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशाम निमित्त कारण है। इतना अंतर है। पंचेन्द्रिय प्राण तथा पर्याप्ति इनमें ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम निमित्त कारण है। तथा मन वचन काय बलोंमें आत्मीय शक्तिकी निमित्त कारणता है। इसलिये इन तीनोंको बल संज्ञा है। इसप्रकार अंतर है।

४३ प्र०—निश्चय अभेद में होता है या भेद में ?

उ०—निश्चय अभेदमें भी होता है। तथा भेद में भी होता है इसका खुलासा—द्रव्य गुण पर्याय इस प्रकार भेद न करके अभेदोपचारमें भी निश्चय होता है। तथा द्रव्य गुण पर्यायमें भेद करके भी निश्चय होता है इतना अंतर है।

४४ प्र०—स्वात्मानुभूतिमें द्रव्यावलंबन होता है या पर्यायावलंबन होता है।

उ०—स्वात्मानुभूतिमें अभेद एकत्वरूप द्रव्याव-लंबन होता है क्योंकि, पर्याय परिणमन स्वरूप है। द्रव्य नित्यरूप है। इस नित्य तथा अभेद रूप आत्मद्रव्य का ही अवलंबन स्वानुभवमें होता है। इस द्रव्यावलंबनसे अनायास ही पर्यायावलंबन हो जाता है क्योंकि द्रव्य गुण-पर्याय स्वरूप ही है वही द्रव्य गुण पर्याय स्वयं स्वयमेवका अवलंबन होता है, अन्य दूसरा कोई अवलंबन करनेवाला होता तो यह प्रश्न उठता। लेकिन स्वानुभव स्वरूप होनेसे स्वरूपावलंबन कहते हैं स्वानुभव अद्वैत स्वरूपी है। द्वैत स्वरूप नहीं है।

४५ प्र०—मिथ्यात्व, माया और निदान इनमें क्या अंतर है?

उ०—ये तीनों ही स्वरूप कल्पनात्मक न होकर पररूप कल्पनात्मक हैं। मिथ्यात्व यह भूतकालीन मिथ्या कल्पनाको ग्रहण करनेवाला है। माया वर्त-मान कालीन वंचनारूप कल्पनात्मक है। निदान—यह भविष्यत् कालीन शरीर भोगाकांक्षारूप विकल्प-नात्मक है ये तीनों ही बहिरंग कल्पना रूप हैं स्वस्व-

रूप कल्पनात्मक ये नहीं हैं इसलिये आत्मज्ञान की हिंसा करने वाले हैं। आत्म-स्वरूप का यथार्थ कथन न करने वाले होनेसे झूठे रूप हैं। इन तीनोंसे ही मिथ्या-विकल्पका ग्रहण होता है अतः स्वरूपका ग्रहण न होनेसे चोरी है। ये तीनों स्वरूपाचरण न होनेसे ब्रह्माचरणरूप नहीं है। कुशील रूप हैं। ये तीनों स्वरूप न होने से ये पररूप परिग्रह होते हैं इसलिये इन तीनोंको धारण करनेवाला व्रती नहीं हो सकता। इस प्रकार इन तीनोंका रूप है।

४६ प्र०—श्रुत ज्ञान और मतिज्ञानमें क्या भेद है?

उ०—श्रुतज्ञानका विषय अनिन्द्रिय(मन)से होता है और मतिज्ञानका इंद्रिय-अनिद्रियसे होता है इस प्रकार अंतर है। श्रुतज्ञानमें ही प्रथम स्वानुभव होता है। मतिज्ञानमें प्रथम स्वानुभव नहीं होता यह भी भेद है।

४७ प्र०—निर्विकल्प ध्यान और नींद इनमें क्या भेद है?

उ०—निर्विकल्प ध्यानमें चैतन्यकी जागृति है सुख शांति, निराकुल-परमानंद, समरसादिक का

स्वाद है । कर्मकी निर्जरा होती है, कर्मका संवर भी होता है। रागद्वेषादिकोंका अभाव होताहै, स्वरूपका अवलंबन होता है, मनकी स्थिरता होती है, चंचलता नष्ट होती है, मन निर्मल परम पवित्र बनता है, मनमें मिथ्या संकल्प-विकल्प नहीं आते । तथा नींदसे प्रमाद आता है, कर्मबंध होता है, स्वकी जागृति नहीं रहती है, कर्मका संवर नहीं होता, कर्मकी निर्जरा नहीं होती है, कर्मका उदय रहता है, मिथ्या संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं, स्वप्नादिक होते हैं, आत्मीक सुखका अभाव है तथा मन मलीन होता है, मनकी चंचलता होती है, मन विकारी होता है, दुःख भी होता है अतः नींद सब तरहसे दोषी है। इस प्रकार अंतर है।

४८ प्र०—संक्रमण और प्रत्याहार में क्या भेद है ?

उ०—उपयोगका एक वस्तुको छोड़कर अन्य वस्तुमें जाना इसे संक्रमण कहते हैं। तथा मन अपने काबूमें रहते हुये जिस वस्तुमें उपयोग लगाने की भावना हो वहीं पर लगाना उसे प्रत्याहार कहते हैं। संक्रमणमें उपयोग अपने अधीन नहीं रहता।

और प्रत्याहारमें उपयोग अपने अधीन रहता है। इस प्रकार अन्तर है।

४६ प्र०—मन और संकल्प विकल्प इनमें क्या कुछ भेद है ?

उ०—मन लब्धि और उपयोगात्मक है, ज्ञानरूप है, मन सत्स्वरूप है। और संकल्प विकल्प कल्पना मात्र हैं। मनमें संकल्प विकल्प आते हैं। यथापि मन संकल्प विकल्प स्वरूप नहीं है, मन संकल्प विकल्पका आधारभूत है, संकल्प विकल्प आधेयभूत है। यों दोनोंमें भिन्नपना है।

५० प्र०—आत्मगुण और जीवगुणमें क्या कुछ अ ार है ?

उ०—आत्म गुण स्वभाव रूप निर्मल, निरावरण, स्थिर हैं। और जीवगुण विभाव रूप मलीन, आवरण सहित, चंचल है, संक्रमणात्मक है।

५१ प्र०—संकल्प विकल्प आत्मस्वभावी हैं या पुद्गल स्वभावी हैं ?

उ०—संकल्प विकल्प न आत्माका स्वभाव है

और न पुद्गल का स्वभाव है। रागादि विकार-स्वभावी है।

५२ प्र०—श्रुतज्ञान और श्रोत्रेन्द्रिय ज्ञान में क्या अंतर है?

उ०—श्रोत्रेन्द्रिय ज्ञान मतिज्ञानात्मक है। मति ज्ञान इंद्रिय अनिन्द्रिय-निमित्तक है। तथा श्रुतज्ञान अनिंद्रियजन्य है। इतना अंतर है।

५३ प्र०—श्रुत ज्ञान और मनमें क्या अन्तर है?

उ०—ज्ञान गुण स्वरूपही मन है और मनकी पर्याय ही श्रुतज्ञान है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवल ज्ञान ये पांचों ही पर्यायें मन की हैं। इस प्रकार मन गुण पर्यायरूप है। (इसका विस्ताररूप खुलासा मेरी बनाई हुई मनोमीमांसा पुस्तकमें देखें)

५४ प्र०—निराकार और निर्विकार इनमें क्या अन्तर है?

उ०—अर्थ विकल्पसे रहितको निराकार कहते हैं और रागादि विकार रहितको निर्विकार कहते हैं।

५५ प्र०—स्वभाव और परिणाममें क्या अंतर है?

उ०—स्वभाव शुद्ध रहता है और परिणाम

अशुद्ध भी होता है। इस तरह दोनोंमें कथनसे भेद है। स्वभाव कहनेसे शुद्धताकाही बोध होता है।

५६ प्र०—अध्यवसाय और परिणाममें क्या भेद है ?

उ०—अज्ञानरूप परिणामको अध्यवसाय कहनेकी रूढि है और परिणाम कहनेसे अज्ञानता का बोध नहीं होता है। इस प्रकार दोनोंमें अन्तर है।

५७ प्र०—कर्म और नोकर्ममें क्या भेद है ?

उ०—कर्मके दो भेद हैं। एक भावकर्म और दूसरा द्रव्य कर्म। ये दोनोंही विकारी हैं। भावकर्म आत्मा के विकार भाव हैं। और द्रव्यकर्म पुद्गलका विकार है। नोकर्म तो औदारिक, वैक्रिकिय, आहारक, और तैजस शरीर बनाने वाली पुद्गल वर्गणाओंको कहते हैं। इस प्रकार दोनोंमें भेद है।

५८ प्र०—योग और कषाय इनमें क्या भेद है ?

उ०—आत्माके प्रदेशोंको चंचल करने वाली शक्ति को योग कहते हैं और आत्माके परिणामोको चंचल करने वालेको कषाय कहते हैं। इस प्रकार दोनोंमें भेद है।

५६ प्र०—मोह और ममता इनमें क्या अन्तर है?

उ०—मिथ्यात्वको मोह कहते हैं और राग-भावको ममता कहते हैं। मोह दर्शन मोहका कार्य या स्वरूप है तथा ममता चारित्र मोहका कार्य है।

६० प्र०—प्रमाता और ज्ञाता इनमें क्या भेद है?

उ०—प्रमाण करने वालेको प्रमाता कहते हैं। जानने वालेको ज्ञाता कहते हैं। ज्ञानके फलको प्रमाण कहते हैं। इस प्रकार दोनोंमें भेद है।

६१ प्र०—प्रमाण और ज्ञान इनमें क्या भेद है।

उ०—ज्ञानके फलको प्रमाण कहते हैं। सम्यक्-ज्ञानको ही फल कहते हैं—अज्ञानकी निवृत्ति ज्ञानका फल हैं।

६२ प्र०—ज्ञेय, ज्ञान और प्रमेयमें क्या अन्तर है?

उ०—ज्ञानके विषयभूत वस्तुको ज्ञेय कहते हैं ज्ञान—यह ज्ञाताका क्रियारूप है और प्रमेय प्रमाता का कर्म है। इस प्रकार अन्तर है।

६३ प्र०—स्वसमय और स्वसंवेदनमें क्या भेद है?

उ०—दर्शन, ज्ञान तथा स्थिरता रूप चारित्र इन तीनोंकी एकतारूप अवस्थाको स्व समय कहते हैं।

तथा संवेदनका अर्थ है ज्ञान । स्वयंको जानने वाले ज्ञानको स्वसंवेदन कहते हैं। इतना अन्तर है ।

६४ प्र०—स्वसमय और परसमय में क्या भेद है ?

उ०—दर्शन, ज्ञान, चारित्रको अपनी शुद्धात्मामें स्थिरता होना इसे स्वसमय कहते हैं तथा पुद्गल कर्म-प्रदेश-स्थित दर्शन ज्ञान चारित्रको पर समय कहते हैं ।

६५ प्र०—पुद्गल कर्म प्रदेशमें दर्शन ज्ञान चारित्रकी स्थिति किस तरह होती है ?

उ०—अपने शुद्ध आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होकर पुद्गल कर्मप्रदेश को अपनी शुद्धात्म-भावना करके उसमें स्थिति होना है । इस प्रकार अपनी अशुद्ध भावनामें ही ज्ञान दर्शन चारित्रकी स्थितिको ही उपरोक्त आरोप करते हैं ।

६६ प्र०—उपलब्धि और संवित्तिमें क्या भेद है ?

उ०— आत्मिक विशुद्धिको उपलब्धि कहते हैं और स्वात्माका ज्ञान होना उसे संवित्ति कहते हैं । उपलब्धि विशुद्धरूप लब्धि का नाम है संवित्ति

ज्ञानका उपयोग रूप है इस प्रकार दोनोंमें अंतर है।

६७ प्र०—कर्ता-कर्म और क्रिया आत्माके होते हैं या पुद्गल के हैं।

उ०-प्रत्येक द्रव्यके कर्ता कर्म आदि अपने अपने निज रूपमें ही होते हैं। पुद्गल द्रव्यका पुद्गलमें कर्तृत्व आदि हुआ करता है और आत्मा अपने निजमें ही कर्मत्वादि करता है। जीव पुद्गलमें कर्ता कर्म आदि नहीं कर सकता। और पुद्गल आत्मामें कर्ता कर्म क्रियादि नहीं कर सकता।

६८ प्र०—संकर और व्यतिकर इनमें क्या भेद है?

उ०—एकमेकरूप मिश्रण होना संकर दोष होता है। और एकमेकका नाश होना व्यतिकर दोष है।

६९ प्र०—संकर व्यतिकर गुणमें, द्रव्यमें या पर्याय में होते हैं?

उ०—संकर व्यतिकर पर्यायमें होते हैं।

७० प्र०—क्रमवर्तीपना और व्यतिरेक इनमें क्या अन्तर है?

उ०—क्रमक्रमसे होने वाली पर्यायको क्रमवर्ती-पन कहते हैं और एकका नाश होकर दूसरा होना

उसे व्यतिरेक कहते हैं। व्यतिरेकमें 'यह वह नहीं है' ऐसी बुद्धि होती है। विष्कंभको क्रम कहते हैं। क्रमप्रवाहका कारण है। क्रमसे होने वाली भी पर्याय है लेकिन उस क्रममें सदृशता पायी जाती है और व्यतिरेकमें विसदृशता पाई जाती है। यह अन्तर है।

७१ प्र०—क्रमवर्तीपना और व्यतिरेक गुणमें है या पर्यायमें ?

उ०—क्रमवर्तीपन पर्यायमें होता है और व्यतिरेकपना भी पर्यायमें होता है।

७२ प्र०—श्रद्धा, रुचि प्रतीति, ये किसके हैं।

उ०—श्रद्धा, रुचि और प्रतीति ये सम्यक्त्वकी पर्याय हैं।

७३ प्र०—स्मृति प्रमाणरूप है या नयरूप है ?

उ०—स्मृति प्रमाणरूप है क्योंकि वह मतिज्ञान रूप है। नय श्रुतज्ञानका विकल्प है।

७४ प्र—उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये द्रव्य के, गुणके या पर्याय के हैं ?

उ०—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये सत्त्वरूपी हैं इसलिये ये तीनोंमें ही होते हैं। लेकिन वक्ता

गौण मुख्यताकी अपेक्षासे कथन करता है। पर्यायमें ध्रौव्यको गौण करते हैं और गुण तथा द्रव्यमें ध्रौव्य को मुख्य करते हैं और वहां व्यय उत्पादको गौण करके कथन करते हैं।

७५ प्र०—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव ये द्रव्यरूप हैं या पर्याय रूप हैं ?

उ०—स्वद्रव्य, स्वद्रव्यरूप है। स्वक्षेत्र स्वद्रव्य का पर्याय है, स्वकाल स्वगुण है और स्वभाव स्वगुण की पर्याय है।

७६ प्र०—स्वभाव और स्वकाल इनमें क्या भेद है ?

उ०—स्वकाल यह स्वगुण है तथा स्वभाव यह स्वगुण का पर्याय है।

७७ प्र०—स्वभाव और स्वक्षेत्रमें क्या अन्तर है ?

उ०—स्वभाव यह गुणका पर्यायरूप है और स्वक्षेत्र यह स्वद्रव्यका पर्याय है। एक गुणपर्याय है और दूसरा द्रव्यपर्याय है।

७८ प्र०—संवेग और निर्वेगमें क्या अन्तर है ?

उ०—संवेग धर्मप्रवृत्ति रूप है और निर्वेग यह अधर्म निवृत्तिरूप है। यानी विधि, निषेधरूप है

अर्थात् संवेगमें विधिमुख कथन है और निर्वेगमें निषेध-मुख कथन है, इतना अन्तर है।

७९ प्र०—भक्ति और वात्सल्यमें क्या अन्तर है?

उ० कर्मोदयकी उपशमता होने पर मन वचन कायकी उद्धतताका न होना ही भक्ति है। तथा और किसीके गुणोत्कर्षकी प्राप्तिके लिये उल्लास होना उसके प्रति वात्सल्य कहलाता है।

८० प्र०—निन्दा, गर्हा इनमें क्या अन्तर है?

उ०—रागादिको बंधका कारण समझकर उनके विषयमें राग बुद्धिको दूरकर उन्हें हटानेका प्रयत्न करना उसे निन्दा कहते हैं और पंच गुरुओंको साक्षीसे कर्मोंका नाश करनेके लिये शक्ति पूर्वक प्रमाद रहित होकर उस रागका त्याग करना गर्हा कहलाती है। निंदामें 'मैंने दुष्ट कार्य किया' इसप्रकार स्वसाक्षीसे उसका त्याग है और गर्हामें पंचपरमेष्ठी या गुरुसाक्षी पूर्वक त्याग है। इस प्रकार इन दोनों में अन्तर है।

८१ प्र०—ज्ञान गुणके अंशोंमें हीनाधिकता होती है या नहीं?

उ०—ज्ञान गुण जितना भी है वह अपने अंशों में स्थित है वह जो कभी कमती कभी बढती होता है वह केवल ज्ञेय पदार्थोंका आकार धारण करनेसे होता है जितना बड़ा ज्ञेय है उतनाही बड़ा आकार ज्ञानका होता है। वास्तवमें ज्ञान गुणके अंशोंमें हीनाधिकता नहीं है।

८२ प्र०—स्वार्थज्ञान स्वावलंबी है या परावलंबी ?

उ०—स्वार्थज्ञान स्वावलंबी है,परावलंबी नहीं है।

८३ प्र०—स्वार्थज्ञान इन्द्रियस्वरूपी है या अतीन्द्रियस्वरूपी है ?

उ०—स्वार्थज्ञान श्रुतका भेद है तथा केवल ज्ञान भी स्वार्थज्ञान है। इसलिये स्वार्थज्ञान अतीन्द्रियरूपभी है तथा अनिन्द्रिय रूपभी है।

८४ प्र०—अतीन्द्रिय और अनिन्द्रिय में क्या अन्तर है ?

उ०—अतीन्द्रियज्ञान उसे कहते हैं कि जिसमें सर्वथा इन्द्रियोंकी सहायता नहीं होती। वह प्रथम तो इंद्रियोंकी सहायता लेता है फिर उस सहायताको छोड़ देता है तब अतीन्द्रिय होता है। फिरभी उस

अतीन्द्रियताको छोड़कर अनिन्द्रियमें आकरके फिर इन्द्रियोंकी सहायता लेता है। अर्थात् अतीन्द्रिय अनिन्द्रिय, इन्द्रियानिन्द्रिय ये तीन अवस्था क्षयोपशम ज्ञानकी होती हैं। क्षायिकज्ञान सर्वथा अतीन्द्रिय है। क्षयोपशम ज्ञान स्वानुभवसे च्युत होकर विचाररूप श्रुतज्ञानमें आता है तब अनिन्द्रिय होता है और मतिज्ञानमें इन्द्रियानिन्द्रिय रूप होता है ऐसी तीन अवस्थायें होती है।

८५ प्र०—आत्मामें परिणति भी होती है या नहीं ?

उ०—आत्मा अपने स्वरूप या स्वभावको छोड़कर कभी परद्रव्य या पर-गुणरूप तथा परपर्यायरूप कभी नहीं परिणमता है। स्वपरणतिमें ही स्वभाव परणति होती है। विभावमें भी अपनी परणति ही रहती है तो भी स्वविकार रूप ही परणमता है मोह रागद्वेष स्वविकारी है। जब इस रूप परिणति होती है उसे ही पर-परणति कहते हैं। पुद्गगल स्वरूप या किसी अन्य द्रव्य स्वरूप परिणति नहीं होती है यह निश्चय नियम समझना चाहिये।

८६ प्र०—तिर्यकसामान्य और उर्ध्वतासामान्य

किस २ द्रव्यमें होते है ?

उ०—तिर्यक सामान्य कालद्रव्य तथा शुद्ध एक प्रदेशी पुद्गल परमाणुमें नहीं होता है। बाकी सब द्रव्योंमें तिर्यक तथा ऊर्ध्वता सामान्य होता है।

८७ प्र०—तिर्यक सामान्य और उर्ध्वता सामान्य स्वभाव रूप है या विभाव रूप है ?

उ०—ये दोनों स्वभाव रूपभी हैं तथा संसारमें जबतक विभावपरिणति होती है तबतक विभाव रूप भी होते है।

८८ स्वप्रभाव और स्वगुणमें क्या अ ंतर है ?

उ०—स्वगुण गुण रूप है और स्वभाव स्वपर्याय रूप है इस प्रकार इनमें अ ंतर है।

८६ प्र०—स्वकाल और काल द्रव्यमें क्या अंतर है ?

उ०—स्वकाल आत्माका परिणमन रूप है और कालद्रव्य जड़ रूप है काल द्रव्य स्वकालके वर्तनाके लिये तथा परद्रव्य की वर्तनाके लिये उदासीन निमित्त है।

६० प्र०—आत्मिक अवगाहन शक्ति और आकार अवगाहन शक्ति इन दोनोंमें क्या अ ंतर है ?

उ०—एक आत्मामें अनंतानंत आत्माओंके रहनेकी शक्ति है उसे आत्मिक-अवगाहन-शक्ति कहते हैं। तथा एक आत्मामें त्रैलोक्यके आकारका अवगाहन होना यह आकार अवगाहन शक्ति है एक आकारमें और आकारावगाहन शक्ति नहीं है।

६१ प्र०—परपरिणति द्रव्यमें होती है या पर्यायमें ?

उ०—परिणति तो पर्यायरूपही है। पर-रूप परिणति भी पर्यायमें ही होती है। इस पर्यायको छोड़कर द्रव्य या गुण भिन्न स्वरूपी (भिन्न प्रदेशी) नहीं है इसलिये परपरिणति द्रव्य गुण पर्याय तीनों की होती है। ऐसा उपचारसे कथन करते हैं।

६२ प्र०—शिव और शक्ति इनमें क्या अंतर है ?

उ०—शिव व्यक्तको कहते है शक्ति अव्यक्तको कहते हैं। मुक्ति पदको जो प्राप्त हो गया उसे शिव कहते हैं। अभी तक जो मुक्तिको नहीं प्राप्त हुआ है उसे अव्यक्त या शक्ति रूप कहते हैं।

६३ प्र०—आत्माको निराकार और पुरुषाकार इस प्रकार दोनों कथन क्यों करते हैं ?

उ०—अर्थ-विकल्प रूप आकारको अपेक्षासे आत्माको निराकार कहते हैं। और जितने भी अर्थ-पर्याय या भाववती शक्ति हैं वे आकार-रहित हैं। और प्रदेशवत्व गुणसे आकार है प्रदेशवत्व गुण व्यंजनपर्याय होती है। नरनारकादि विभावव्यंजन पर्याय है। और स्वभावव्यंजन पर्याय पुरुषाकार सिद्ध पर्याय है। इसप्रकार इन दोनोंमें अंतर है।

६४ प्र०—आत्माका स्वभाव अप्रमत्त या प्रमत्त नहीं है तो क्या स्वभाव है तथा प्रमत्त अप्रमत्त क्या है?

उ०—विरति या व्रत आत्मा के चारित्र गुणकी एक पर्याय है। वह पर्याय प्रमाद अप्रमाद विशेषण युक्त है। इसलिये आत्माका स्वभाव नहीं है।

चारित्र का उपलक्षण अप्रमाद है, प्रमाद तो विकार रूप है उसी तरह और भी अनेक उपलक्षण हैं। यह कथन भी चारित्रको आत्माका गुण मानने पर अप्रमत्तादि उप लक्षण रूप है तथा चारित्रको ज्ञानकी स्थिरता रूप ज्ञान स्वरूपका पर्याय माननेपर इन प्रमाद अप्रमादादिकोंका कथन तो बहुत दूर उड़ जाता है क्योंकि श्री कुंदकुंदाचार्य ने चारित्र के विषयमें कहा है।

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जोसो समोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोह क्खोभविहीणो परिणामो अप्पणोहु समो।७।प्र.

अर्थात् चारित्रको धर्म माना है। तथापि वह धर्म समनामका है 'सम' यह गुण सम्यक्त्व रूप है उसकी स्थिरतारूप क्षोभरहित परिणाम चारित्र है इसलिये चारित्र समगुणका शुद्ध पर्याय ठहरता है। इस अपेक्षासे चारित्रको पर्यायपना आता है। अध्यात्ममें चारित्रको स्वतंत्रगुण नहीं माना है। इस लिये अप्रमत्त और प्रमत्तादिकों का कथन चारित्रसे बहुत दूर संबंध रखनेवाला होनेसे अप्रमत्तको आत्मा का गुण नहीं माना है। तथा व्यवहार में चारित्रको गुण मानते हैं। सिद्धोंमें जो आठ मुख्य गुण माने हैं उनमें चारित्रका नाम नहीं आता है। कुंदकुंदाचार्य ने दशभक्ति में कहा है—

सम्मत्तणाण दंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥

अर्थात्—इन आठगुणों में सम्यक्त्व को गुण

ा है। तथा उस समगुणके मोह और क्षोभ ये दो विकार माने हैं समगुण का नाम ही सम्यक्त है और सम्यक्त्व प्रधान होने से उसे आत्मा का गुण माना है चारित्र को नहीं। तथापि सद्भूत व्यवहार नयसे उस चारित्रको गुण माना है। इस प्रकार सक्षेपसे इसका स्वरूप लिखा है विशेष ग्रंथांतरमें देख लेना चाहिये।

६५ प्र०—अनुक्त अवग्रह ज्ञानमें और मनःपर्यय ज्ञानमें क्या भेद है?

उ०—अनुक्त अवग्रहमें अनुमेय-अनुमानपना है और मनःपर्यय ज्ञानमें अनुमेय अनुमापक भाव नहीं है। क्योंकि मनःपर्यय ज्ञान विकल प्रत्यक्ष ज्ञान है और अनुक्त अवग्रह परोक्ष ज्ञान है। इस प्रकार दोनों में अंतर है।

६६ प्र०—भावश्रुतज्ञान और स्वसंवदन ज्ञानमें क्या अंतर है?

उ०—भाव श्रुतज्ञान कारण है और स्वसंवेदन कार्य है। यह कथन आत्मानुभवकी अपेक्षा है कारण कार्यका संबंध दिखाया है। स्वसंवेदन ज्ञानका

कथन जबतक ज्ञानोपयोगमें संक्रमणपना है क्षयो· पशम है तबतक ही मुख्यतासे होता है। क्षायिक ज्ञानमें संक्रमण रूप नहीं है। इसलिये एक समय· में ही स्व-पर ज्ञान होनेसे केवली में इसका कथन नहीं करते हैं। तथापि वह निश्चयसे स्वसंवेदन रूप ही है।

६७ प्र०—भावना और उपयोग में क्या कुछ अन्तर है ?

उ०—भावनामें ज्ञानकी चलाचल वृति रहती है क्षयोपशम ज्ञानमें ही भावना होती है यह भावना ज्ञानको स्थिर करनेके लिये कारण है। अर्थ-ग्रहण व्यापार को उपयोग कहते हैं। भावना मतिज्ञानमें विज्ञात-पदार्थ में पुनः पुनः चिंतवन रूप कही है। "विज्ञातेर्थेपुनः पुनश्चिंतनं भावना।" ऐसा कहा है श्रुतज्ञानमें भावनाका लक्षण चलाचल-पना लिया है क्योंकि श्रुतज्ञानमें चिंतवन नहीं है। श्रुतज्ञानमें ध्यान है। इसलिये चलाचल वृत्ति कहा है। अचल वृतिको ध्यान कहा है। चलाचल वृत्ति, अचलवृति को कारण है।

अवधि ज्ञानमें भी चितवन नहीं तथा पर-मूर्त पदार्थको अवधिज्ञान प्रत्यक्ष जानता है इसलिये अवधि ज्ञानमें भावना नहीं है। उपलब्धि और उपयोग दोनों ही लिये हैं। "यथापूर्वमुपलब्धि-भावनोपयोगरूपेण त्रिधा श्रुतज्ञानं व्याख्यातं तथा अवधिभावनां विहाय द्विधा गृह्यताम्। पं. का. स.। मनपर्यय ज्ञान में तथा केवलज्ञान में भी भावना ज्ञान नहीं है। भावना मति श्रुत ज्ञानमें ही है। मति ज्ञानमें चितवन है इसलिये पुनःपुनःचितवन लिया है। श्रुत ज्ञान चितवन रूप नहीं है। श्रुत ज्ञानमें ध्यान होता है इसलिए ध्यानका लक्षण स्थिर ज्ञान है। वह श्रुतज्ञान चलाचल होते होते अचल होता है। इस प्रकार भावनाका स्वरूप है। और उपयोग पदार्थोंके जाननेको व्यापाररूप है। लब्धि और उपयोग ज्ञानका स्वभावही है। विशुद्धिको लब्धि और व्यापारको उपयोग कहते हैं। ये दोनों ही शाश्वत हैं। एक सयम भी ज्ञानसे रहित नहीं होते। केवल ज्ञानमेंभी लब्धि उपयोग रहते हैं उसमें भावना नहीं है। इसलिये ज्ञानकी चलवृत्ति और चला-

चलवृत्ति स्वभाव नहीं है। ये क्षयोपशम ज्ञान में होते है। इसलिये उनका अभाव हो जाता है तथापि भावना स्थिर स्वभावको कारण है।

९८ प्र०—सप्ततत्व आत्माके है या पुद्गल के है ?

उ०—पुद्गलके नहीं हैं, आत्माके हैं इसका विशेष ज्ञान सद्गुरुके मुखसे ही सुनकर कर लेना चाहिये क्योंकि, यह विषय लिखनेका नहीं। योग्य शिष्योंकी पात्रता देखकर सद्गुरु मौखिक रूपसे समझाते हैं उसी प्रकार मंत्रविधान भी गुरुपदेशसे लेनेको कहा है। ध्यानका विषय भी सद्गुरुके ही मुखसे सुनना चाहिये। ऐसी नीति होनेके कारण यहां पर उसका खुलासा नहीं लिखते। वाचक वृंद इस विषयमें क्षमा करें।

९९ प्र०—ध्यान और समाधिमें क्या भेद है ?

उ०—ध्यान कारण है और समाधि कार्य है। इस प्रकार अंतर है।

१०० प्र०—इंद्रिय और मनमें क्या अंतर है ?

उ०—मन गुण है उसकी विभाव पर्यायें इंद्रियां है इस प्रकार इन दोनों में अंतर है।



श्री जैनसिद्धान्त ग्रंथमाला

पहाड़ीधीरज, देहली।

"जैन सिद्धान्त ग्रन्थमाला" का यह दूसरा पुष्प आपके हाथोंमें है। एक नियमित योजना बनाकर इस ग्रन्थमालाको एक प्रबन्ध समितिके अन्तर्गत चलाया जा रहा है। इसके उद्देश्य जैन धर्मके प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंका सुन्दर प्रकाशन कर उन्हें लागत मूल्यपर लोगों तक पहुँचाना और जिन वाणी का प्रचार करना है। इसके कार्य-कर्ता सुयोग्य व उत्साही हैं आशा है कि ग्रन्थमाला अवश्य उन्नति करेगी तथा शीघ्रही अन्य कई उपयोगी ग्रन्थोंके प्रकाशनमें समर्थ होगी। इसके संगठनमें जिन महानुभावोंने तन मन धनसे जिस किसी रूपमें सहायता दी है उनको धन्यवाद है।

इस ग्रन्थमाला के

संरक्षक २५०) एक मुश्त प्रदान करने वाला महानुभाव होंगे।

विशेष सहायक १०१) एक मुश्त प्रदान करनेवाले महानुभाव होंगे।

सहायक ५१) एक मुश्त प्रदान करनेवाले महानु-भाव होंगे।

आजीवन सदस्य २५) एक मुश्त प्रदान करनेवाले महानुभाव होंगे।

इन सब महानुभावोंकी नामावली ग्रन्थमालासे प्रकाशित प्रत्येक पुस्तकमें प्रकाशित होती रहेगी।

[इसके सिवाय जो महानुभाव उपरोक्त रकमसे कमकी सहायता देंगे अथवा अपनी ओर से कोई पुस्तक छपाकर ग्रन्थमालाको भेंट करना चाहेंगे वह भी सहर्ष स्वीकार कर ली जावेगी।]

संरक्षक—

विशेष सहायक—

ला० पद्मचद्र शिखरचन्द्र जी

ला० कुञ्जलाल कुन्दनलालजी

सहायक—

ला० निरञ्जनदास बैजनाथ जी

ला० विश्वम्भरदास एण्ड सन्स

अजीवन सदस्य-

ला० बुद्धूमल प्रेमचन्द्रजी

ला० तुल्लनमलजी

डा० फूलचन्द्रजी

ला० मनोहरलाल मोतीलालजी जौहरी

ला० प्यारेलाल जगन्नाथजी

ला० न्यादरमल गोविंदप्रसादजी

ला० बाबूराम हीरालाल जी

ला० मोहनलाल श्रीपाल जी

ला० हजारीलाल सुलतानसिंहजी

ला० हेमचन्द्र नेमचन्द्रजी कलकत्ते वाले

ला० पोहकरमल जी

ला० नन्हेमल नेमचन्द्रजी

जैन कम्पनी सूतवाले

ला० मंगतरायजी स्याद्वादी

ला० भोलाराम ऋषभदासजी

मोती ब्रादर्स आगरेवाले

ला० इन्द्रमलजी दलाल

मुन्शी उमरावसिंह महावीरप्रसाद जी

ला० बशेश्वरनाथजी रोहतकवाले

ला० फूलचन्द्रजी पदमचन्द्रजी पाटनी

वैद्य शीतलप्रसाद महावीरप्रसादजी

ला० बसंतलाल ललिताप्रसादजी

बा० प्रकाशचन्द्र कैलाशचन्द्रजी

ला० करमचन्द्रजी

ला० खुशीराम चन्दूलालजी पानीपतवाले

ला० कश्मीरीलाल सांवलसिंहजी

ला० जयनारायनजी पानीपतवाले

ला० लालचन्दजी साइकिलवाले

ला० चुन्नीलाल मदनलालजी

ला० जियालाल अजितप्रसादजी

ला० चौथराम जयकुमारजी मुलतानवाले

ला० बुद्धामल रामजीलाल फीरोजपुर

ला० घासीरामजी गोहानावाले

ला० सूरजभान श्रीकिशनजी

ला० महावीरप्रसादजी (ग्लोब फार्मेसी)

स्त्रीसमाज डिप्टीगंज

श्रीमती रामप्यारीजी हैडमिस्ट्रेस

श्रीमती गणेशीबाईजी मुलतानवाली

धर्मपत्नी ला० मट्टोमलजी

" डा० चन्द्रभानजी

" ला० अतरसेनजी

" ला० मोतीलालजी

" ला० रामचन्द्रजी

" ला० गिरधारीलालजी

" ला० दरोगामलजी सूतवाले

ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित प्रत्येक ग्रन्थकी संरक्षकोंको १०, विशेष सहायकोंको ४, सहायकोंको २ तथा आजीवन सदस्योंको १ प्रति भेंट दी जायेगी।

ग्रन्थोंकी विक्रीसे जो रुपया आवेगा वह आगे ग्रन्थोंके प्रकाशनमें ही लगाया जावेगा।

अतः आप लोगोंसे प्रार्थना है कि अधिकसे अधिक संख्यामें इस ग्रन्थमालाके संरक्षक, विशेष सहायक, सहायक तथा अजीवन सदस्य बनकर उपयोगी ग्रन्थोंके प्रकाशन और धर्म प्रचारके इस महान् कार्यको सुगम बनावें।

कृपया ग्रन्थमाला सम्बन्धी पत्र-व्यवहार निम्न पते पर करें :—

(डा०) फूलचन्द जैन—
मन्त्री, श्री जैन-सिद्धान्त-ग्रन्थमाला
पहाड़ी धीरज, देहली